जरासंधवध

श्रीरामदास शास्त्री.

वृन्दावन से प्रकाशित—

एक अनूठा मासिक पत्र—

'भक्तभारत'

जिसमें आप पढ़ेंगे—

१—व्रज संस्कृति और व्रजरस से भरे, हृदय को गुदगुदाने वाले भावचित्र।

२—प्राचीन-अर्वाचीन धार्मिक मान्यताओं का बोधपूर्ण युक्ति-युक्त सामञ्जस्य।

३—धर्म और संस्कृति की मर्यादा पूर्ण युगानुरूप विविध व्याख्यायें।

और वर्ष में कई विशेषाङ्क—

जो शिक्षा जगत् में सम्मान प्राप्त कर चुके हैं, 'भक्तभारत' का हर विशेषाङ्क एक अछूते विषय पर प्रकाशित होता है।

आप भी ग्राहक बनिये—

पता—'भक्तभारत' मासिक, वृन्दावन, उ. प्र

ब्रजरस माधुरी

[ब्रज के रसिक-सन्तों की दिव्य-वाणियों से अनुप्राणित]

लेखक और सम्पादक—

विद्यावारिधि, दर्शन केशरी, महामहिम, महामण्डलेश्वर

सख्यरस उपासक

अनन्त श्री १०८ श्री स्वामी कृष्णानन्दास जी महाराज

के

चरणाश्रित

महामण्डलेश्वर श्रीरामदास शास्त्री.

सम्पादक 'भक्तभारत-मासिक'

वृन्दावन

प्रकाशन संस्थान

भक्तभारत ग्रन्थमाला

चार सम्प्रदाय आश्रम

वृन्दावन, उ. प्र.

★

प्रथम संस्करण

१०००

वसन्त पञ्चमी–२०३१

१६ फरवरी ७५

★

सर्वाधिकार सुरक्षित

★

मूल्य—३०० ६/-

★

तार—'भक्तभारत', फोन–११६

★

मुद्रक

श्री विभूतिकृष्ण गोस्वामी

वैजयन्ती प्रेस. वृन्दावन.

व्रजरस की भूमिका

व्रजरस की भूमिका जहाँ से प्रारम्भ होती है—वह सर्वोत्कृष्ट अलौकिक दिव्यात्मक एक तत्व विशेष है। जिसे–'ब्रह्म' 'आनन्द' तथा 'रस' शब्द से भी सम्बोधित किया जाता है। जगत में प्रकट रूप से आनन्दित एवं रसाप्लावित करने वाला वही तत्व 'श्रीकृष्ण' नाम से पुकारा जाता है। भगवती श्रुति ने 'रसो वै सः' वाक्य से श्रीकृष्ण को ही इङ्गित किया है। वही ब्रह्म–श्रीकृष्ण है, श्रीकृष्ण ही रस है और यही रस व्रजभूमि में विखरा हुआ है।

मधु के बिना 'रस' अथवा 'आनन्द' की अभिव्यक्ति नहीं होती, अतएव आनन्दमय और रसमय ब्रह्म की अभिव्यक्ति श्रीकृष्ण-मधु से ही सम्भव है। ब्रह्म का स्वरूप आनन्दमय है। आनन्द, ब्रह्म, रस अथवा श्रीकृष्ण पर्यायवाची हैं, समस्त ब्रह्माण्ड के पदार्थ आनन्द से ही उत्पन्न हैं, आनन्द के द्वारा ही उन्हें जीवनी शक्ति मिल रही है, आनन्द की ओर ही समस्त गतिशील हैं, आनन्द से ही यह समस्त विश्व तृप्त है और अन्त में आनन्द में ही यह सब प्रवेश कर जाता है। तैत्तिरोय उपनिषद का एक मन्त्र उक्त सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहता है :—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्, आनन्दाद्धचेव खल्विमानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्वमी संविशन्तीति॥

व्रज के नगर-गाँव, खेत-खलिहान, गली-गिरारे, नदी, तालाब, कुण्ड, सरोवर, वन, उपवन और पनघटों पर वही आनन्द, वही रस, श्रीकृष्ण ही सर्वत्र छाये हुए हैं। इस रसराज शिरोमणि की अधिष्ठात्री देवी हैं—'श्रीराधा'। महाभाव स्वरूपिणी श्रीराधा के साथ विराजमान यह अद्वय रस तत्व ब्रह्म, व्रज की शोभा को प्रतिपल नवनवायमान रूप से प्रकाशित कर रहा है। यह रस तत्व श्रीकृष्ण ही माँ यशोदा की गोद में वात्सल्य का और सखा मंडली के बीच सख्य का तथा व्रजाङ्गनाओं के साथ रासलीला में शृङ्गार का संरक्षण कर रहा है।

वेदान्त वेद्य परात्परब्रह्म श्रीकृष्ण आज भी व्रजभूमि के प्राङ्गण में नृत्य कर रहा है, उसकी मधुरिमा से व्रज का कण-कण रस सिञ्चित है, इसी व्रजरस की सरिता के तट पर आज भी—

"ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं"

कहावत चरितार्थ होती देखी जाती है।

व्रज के रसिक सन्तों ने अपनी दिव्य अलौकिक वाणी-सरिता में इसी दिव्य रस को प्रवाहित किया है।

व्रज का रस एक अथाह सागर है। इसका न आदि है, न अन्त। इसके मध्य का भी पता नहीं है। इसमें गोते लगाने वालों को ही श्रीराधा-कृष्ण दिव्य लीला के मोती हाथ लगते हैं, कई गोताखोर तो इसमें डूब कर मर भी जाते हैं, तब वे अमर कहे जाते हैं। किन्तु व्रजरस की दिव्य अलौकिक संसार-शून्य लीलाओं का चिन्तन दर्शन यदि कहीं विकृत भाव से कर लिया तो फिर घोर पतन भी होता है, अतः व्रजरस की लीलाओं का अध्ययन, मनन, चिन्तन करते समय तथा रसिकों की वाणी का पाठ करते समय जो पाँच भौतिक इन्द्रियों को जड़वत् समझकर अपने अन्तःकरण को लीलारस में डुबो देगा—वही इस दिव्य आनन्द का लाभ प्राप्त कर सकेगा। अन्यथा यदि दिव्य लीला का अनुसंधान कहीं इन्द्रियों के माध्यम से होने लगा तो रसिकता धूल में मिल जायेगी और घोर-गर्त्त में गिर जायेगा। इसलिये 'प्रेम पन्थ' को कंटकाकीर्ण मार्ग बताया गया है, यह तो मोम के बने घोड़े पर चढ़कर अग्नि में होकर चलना है —

'चढ़कर मौम तुरङ्ग पै, चालिवो पावक मांहि'

प्रस्तुत ग्रन्थ में उक्त व्रजरस का विवेचन हुआ है, वैष्णव सम्प्रदायों के सभी रसिक सन्तों की वाणी के आधार पर रस की अनेक विधाओं को भाँति-भाँति से सजाने का प्रयास किया है, पुस्तक कहाँ तक उपयोगी बन सकी है—यह तो रसिक जन ही बतायेंगे। हमसे तो जैसा कुछ उलटा-सीधा बन पड़ा, सामने रख दिया है। 'भक्तभारत मासिक' के कई अंकों में इस रस ग्रन्थ के बारे में उल्लेख किया गया था, परन्तु समय और शक्ति दोनों का ही अभाव कार्य के मार्ग में बाधा डालते रहे। आज की मंहगाई का प्रभाव हर क्षेत्र में समान रूप से है, कागज और प्रेस की कीमतें आकाश को छू रही हैं, फिर भी हमने साहस के साथ आगे कदम बढ़ाया और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की कृपा से ही यह प्रयास सफल भी हुआ है।

ग्रन्थ के लेखन, शोधन, सम्पादन में अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं, इसका उत्तरदायित्व हमारे ऊपर ही है, विज्ञ पाठकों से अनुरोध है कि उन्हें कहीं कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो वे हमें सूचित करने की कृपा करें।

चार सम्प्रदाय आश्रम
वृन्दावन,
वसन्त पञ्चमी २०३१

व्रजरसिकों अनुचर
—रामदासशास्त्री.

"परमोत्कृष्ट व्रजरस माधुरी"

वह सर्वदा रस ही है,भले ही अनिर्देश्य निराकार निरीह अवस्थापन्न ज्ञानियों का ब्रह्म हो, अथवा परम प्रकाशमय सर्वान्तर्यामी रूपमें परमात्मा हो। किसी भी अवस्थामें उसका रसत्व निरस्त नहीं है। रस ही तो आनन्दका हेतु है। जीवमात्र का एक मात्र चरमोपलभ्य पदार्थ आनन्दोपलब्धि रसोपलब्धि से भिन्न नहीं है। श्रुति भी कहती है **"रसो वै सः, रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति"** वह रसरूप है उस रसको प्राप्त करके ही जीव आनन्द प्राप्त करता है।

यह लक्षण तो उसका अचिन्त्य, अग्राह्य, अदृश्य, अस्पर्श्य, अनिर्वचनीय आदि स्वरूप में है, फिर उसका दूसरा स्वरूप जो चिन्त्यों का भी चिन्त्य, ग्राह्योंका ग्राह्य स्वधर्म युक्त एवं सौन्दर्य कारुण्यादि का अनन्त सिन्धु है वह सर्वथा वर्ण्य (वचनीय) होकर भी अनिर्वचनीय का भी अनिर्वचनीय अर्थात् परमोत्कृष्ट रस स्वरूप हो जाता है। सृष्टिके आदिकाल में जब विशाल उत्ताल तरंगवान् सिन्धु जिनके एक रोमको आर्द्र करने में असमर्थ रहा, चन्द्रमाके समान चमकीले दन्ताग्रभाग में स्थित विशाल भूमण्डल कलंक के समान जहाँ समाविष्ट प्रतीत होता था,यहाँ पर भी रसकी पूर्ण अभिव्यक्ति थी। काव्यकोविद उसे अद्भुत संज्ञा ही प्रदान करेंगे। हिरण्यकशिपुके उदर को विदीर्ण कर उसके बहते हुए रक्त से रञ्जित हस्त तथा लपलपातीजिह्वा, फहराती सटा, विकराल डाढ़ आदि को धारण करते हुए नृसिंह भगवान्, काव्याचार्यों के लिये वीभत्स, भयानक, रौद्र तथा वीररस के आश्रय हैं और उसी समय में प्रह्लादको गोदी में लेकर जीभ से चाटते हुए वात्सल्य रस के भी आश्रय दिखाई पड़ते हैं। नराकार में भी कितनी बार शान्त रस का आस्वादन किया है। मुनि मनमोहक रविकुल भूषण श्रीराघवेन्द्र में तो सभी प्रकार के रसास्वाद कविगणों को सुलभ हुए हैं तभी तो उनके चरित पर आदि कवि वाल्मीकि से लेकर वर्तमान तक, किंवा भविष्यत् में भी कितनी (वाक्यं रसात्मकं) काव्य रचना होगी जिसकी कोई गणना ही नहीं है।

वस्तुतः भगवान् एक हैं पूर्ण हैं, उनमें अपूर्णता का तो कहीं कभी अवकाश ही नहीं है, सर्वत्र सर्व रस रूप हैं। न्यूनता या कमी तो अपूर्णता में ही रहती है। तथापि बाह्य रूप से रसों की संख्या तथा परिकल्पना अभिव्यक्ति को लेकर ही की जाती है अथवा स्थूल दृष्टि से ऐसा समझें, जैसे एक कलाकार सम्पूर्ण कलाओं में निपुण होने पर भी रंगमञ्च पर तदनुरूप उतनी कला का ही प्रदर्शन करता है। अथवा जितने रसों का हमें आस्वाद चाहिये, तदनुसार रसाभिव्यक्ति के लिये तत्तद्रसोचित भूमि, सामग्री एवं पात्रों की आवश्यकता होती है। उनके माध्यम से ही वह परम निपुण कलाकार अपनी कलाओं की अभिव्यक्ति कर पाता है।

कमलनयन भगवान् बहुत बार इस मर्त्य लोक में आकर सबके दृष्टिगोचर हुए हैं। उस समय अधिकारी जंगम जीवों ने उनसे रसास्वादन प्राप्त किया। परन्तु भगवद् अवतारों में भी श्रीकृष्ण की ही यह विलक्षणता है जो जंगम ही नहीं, वृक्षलता प्रभृति स्थावरों तक को रस (प्रेम) वितरण करते हैं--

"अवतारा: सन्त्यन्ये सरसिजनयनस्य सर्वतोभद्रा: ।
कृष्णादन्य: को वा यो वृक्षलताष्वपि प्रेमदो भवति ।।"

अनेक भक्तों तथा आचार्यों ने रस विषय में श्रीकृष्णचन्द्र की उत्कृष्टता बताई है। इसमें विचिकित्सा भी नहीं है सत्य ही श्रीकृष्ण का रस वैशिष्ट्य सभी को स्वीकार करना पड़ेगा। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि रसाभिव्यक्ति का परमोपयोगी स्थल व्रजधाम तथा रासेश्वरी श्रीराधा हैं, उनके ही काय व्यूह स्वरूप (विपक्ष में) चन्द्रावली आदि एवं परिकरों में ललिता विशाखा आदि सखी मंडल तथा स्नेह की साक्षात् मूर्ति नन्द यशोदा आदि और मित्रता के आदर्श श्रीदाम-सुबल आदि विशिष्ट समाज ही इस रसोत्कर्ष में प्रधान सहायक हैं। सभी रसिकाचार्यों की यह मान्यता स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की रसोत्कृष्टता जो व्रज में रही आगे उतनी नहीं रह पाई। यद्यपि आगे भी सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ, देवकी-वसुदेव मातापिता तथा उद्धव आदि सखा सभी प्रकार के रसों के सहयोगी उन्हें वहाँ भी प्राप्त हुए थे। इस रसाभिव्यक्ति को लेकर रसिकाचार्यों ने श्रीकृष्णचन्द्रको द्वारिका में पूर्ण, मथुरा में पूर्णतर एवं व्रजमें पूर्णतम माना है। इस प्रकार रसिकों की परम्परा में एक ही श्रीकृष्ण अनेक हो गये हैं। जितने कृष्ण भावों में बँधे--उतनी ही रसिक सम्प्रदाय या परम्परा प्रचलित हुई हैं। गीतोपोदेष्टा द्वारिकास्थ, मथुरास्थ श्रीकृष्ण को इष्ट मानकर चलने वाली परम्परा तो स्वल्प ही हैं। अत्यधिक परम्परा व्रजस्थित श्रीकृष्ण को लेकर ही प्रचलित हुई हैं। व्रजस्थ कृष्ण-परम्परानुगामी सभी अपने-अपने इष्ट का वैशिष्ट्य मानते हैं। इन परम्पराओं से श्रीकृष्ण की रसिकता का तो परिचय मिलता ही है। साथ ही यह भी निश्चित होता है कि यह रसिकता व्रज में ही है अन्यत्र नहीं। अत: सुनिश्चित होता है कि व्रजरस माधुरी से ही श्रीकृष्णरस माधुरी का उत्कर्ष है।

यह रसमाधुरी वैशिष्ट्य व्रज में ही क्यों है? इसमें प्रथमहेतु व्रजभूमि है, जहाँ पर श्रीकृष्ण का पूर्ण परब्रह्मत्व अर्थात् स्वातन्त्र्य अवस्थित है। ब्रह्म सर्वथा सर्वदा असीम है, परन्तु जब भी कहीं वह अवतार धारण कर जीवोंके समक्ष आया है। उसके वैदिकादि कार्य या मर्यादा आदि की सीमा को स्वीकार किया है। मीन, कच्छप, बराह तथा नृसिंहादि अवतार तो किसी एक प्रयोजन सिद्धि के लिए ही सीमित थे। नरावतारोंमें भी अधिकांश ऋषिरूपमें शान्त से आदर्शमय ही बने रहे। मानव जीवनका कोई परिपूर्ण अवतार है तो सूर्य कुल में श्रीरामचन्द्र रूप से ही है। मानव जीवन की समस्त विधियाँ उपलब्ध होती हैं। रस विषय में भी अन्य अवतारों से यहाँ आधिक्य

है। परन्तु उनके सामने मानव आदर्श है। राम अवतार का एक मात्र लक्ष्य है स्वयं वेद मर्यादा का पालन कर सभी मानवों को उसके अनुसार चलने का मार्ग प्रशस्त करना। पुत्र का माता, विमाता, पिताके प्रति, भाई का भाई के प्रति, पति का पत्नी के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, राजा का प्रजा के प्रति, प्रजा का राजा के प्रति, शत्रु का शत्रु के प्रति तथा विभिन्न मित्र-बान्धव आदि का एक दूसरे के प्रति कैसा सद्भाव व्यवहार होना चाहिये यह उन्होंने अपने जीवन से प्रत्यक्ष दिखाया है।

रस, जल के समान तरल पदार्थ है, यद्यपि वह मर्यादा में रखा जाता है परन्तु उसको अभीष्ट है स्वच्छन्द गमन। जहाँ भी स्थान मिलेगा। वह चलता रहेगा, रुकना उसका धर्म नहीं। बल्कि अधिक रुकने पर वह विकृत हो जाता है। यह रस तो वस्तुतः इस सामान्य जल से भी कहीं अधिक स्वच्छन्द भगवान का रूप ही तो है। पर वह भगवान भी क्या करे परिमित प्रकृति में आकर उसे भी परिमित होना ही पड़ता है। वह स्वच्छन्द है—प्रकृति से परे अपने ही धाम में।

यह सत्य है कि उससे परे भी सर्वत्र भगवान् का ही निवास है **"ईशावास्यमिदंसर्वम्"** लौकिक उदाहरण में जैसे कोई राजा सम्पूर्ण राज्य का स्वामी होते हुए भी स्वच्छन्द कार्य का स्थान उसका कोई विशिष्ट ही होता है, उसी प्रकार यह ब्रजभूमि उस रस (भगवान्) के लिये अपना विशिष्ट स्थल है, जहाँ वह निर्मर्यादित होकर केलि करता है। यही कारण है श्रीकृष्ण की पूर्व कथित विशेषता ब्रज में ही कहीं अधिक है। यहाँ प्रेम का ही साम्राज्य है, इस ब्रजरस माधुरी में सामाजिक विवाह आदि का बन्धन भी नहीं है। सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीकृष्ण जैसे मर्यादा के बन्धन से रहित हैं, उसी प्रकार अन्य ब्रजवासी भी श्रीकृष्णके प्रेम में अमर्यादित हैं। उस काल में, आर्यमर्यादा सुदुस्त्यज थी, परन्तु रस की उत्ताल तरंगों ने उसको भी कुछ न समझ ढहा ही दिया, लोक मर्यादा तो क्या? लोकोतर काव्यरसके अनुसार परोढा(अन्य से विवाहिता) वनिता में रस नहीं रहता परन्तु यहाँ तो परोढा में ही रस की स्थिति है। कारण स्पष्ट है ब्रज एक मात्र रसभूमि है उसकी केलि किंवा माधुर्य यहीं पूर्ण रूप से स्थित है। भले ही रस रूप या रसराज श्रीकृष्ण बाहर जाकर मर्यादा में हैं,क्यों—कि वे द्वारिकाधीश रूप में मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकते, यदि करें तो उन्हें भय है कि मैं स्वयं इस लोक का नष्ट करने वाला हो जाऊँगा, उन्होंने गीता में भी यह स्वीकार किया है—

"नमे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषुलोकेषु किंचन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्। संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाःप्रजाः॥
(गीता ३-२२-२३-२४)

परन्तु ब्रजधाम में उक्त वाक्यों की कोई संगति नहीं है, क्योंकि यहाँ तो अमर्यादित निरतर रस प्रवाह प्रवाहित है, जिसे स्वयं भगवान भी मर्यादा में नहीं बांध सकते।

इस प्रकार सभी शास्त्रों के आलोडनका निष्कर्ष निकलता है कि श्रुति जिस अखण्ड अनन्त रस स्वरूप का वर्णन करती है वह सम्पूर्णरस व्रज में ही संभव है अन्यत्र नहीं। अतः व्रजरसमाधुरी की कहीं किसी से तुलना नहीं, अनित्य स्वर्गादि लोकों की बात ही क्या, बैकुण्ठ आदि नित्यभगद्धाम में भी मुख्यतम गोलोकधाम से भी व्रज-रस माधुरी परमोत्कृष्ट रूप से विराज मान है।

★

श्रीकृष्णरूपमाधुरी और व्रजरस

●

[प्रेमावतार श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के अनुयायी षड्गोस्वामी श्रीरूप,सनातन, जीव प्रभृति ने लुप्त प्रायः व्रजभूमि के पावन लीला स्थलों का पुनः प्राकट्य कर व्रज में रागानुगा भक्ति का प्रचार प्रसार किया है, तदनुसार दास्य, सख्य, वात्सल्य शृंङ्गार आदि रसों के द्वारा व्रज भूमि को आप्लावित करने में अन्य समस्त रसिकाचार्यों का पथ प्रदर्शन भी किया है, गौड़ीय सम्प्रदाय के इन महानुभावों ने अपनी दिव्यवाणी के द्वारा संस्कृत वाङ्मय को व्रजरस से भरवा दिया है, रसिकों के आस्वादन के लिये उनके कुछ अंश यहाँ दिये गये हैं]।

श्री रूपगोस्वामीकृत--श्रीराधाकृष्ण गणोद्देश दीपिका से:—

सुधालावण्यमाधुर्यदलिताञ्जनचिक्कणः ।
इन्द्रनीलमणिः किंवा नीलोत्पलरुचिप्रभा ॥१॥
किंवा नव्यतमालोऽपि मेघपुञ्जमनोहरः ।
प्रभामारकती कान्तिः सुधालावण्यवारिधिः॥२॥
पीतवस्त्रपरीधानो वनमालाविभूषितः ।
नानारत्नभूषिताङ्गो नाना केलिरसाकरः ॥३॥
दीर्घकुञ्चितकेशोऽपि बहुगन्धसुगन्धितः ।
नानापुष्पमालया च चूड़ादीप्तिमनोहरा ॥४॥
श्रीमल्लाटपाटीरस्तिलकालकशोभितः ।
लीलोन्नतभ्रूविलासकामिनीचित्तमोहनः ॥५॥
घूर्णायमानं सुनयनं रक्तनीलोत्पलप्रभम् ।
खगेन्द्रचञ्चुलावण्यसुनासाग्रजसुन्दरः ॥६॥
मनोहारि कर्णयुग्म मणिकुण्डलशोभितम् ।
नानामणिकुण्डलाढ्यगण्डस्थलविराजितः ॥७॥

मुखपद्मं सुलावण्यं कोटिचन्द्रप्रभाकरम् ।
नानाहास्यसुमधुरश्चिबुको दीप्तिमान् भवेत् ॥८॥

कण्ठदेशः सुलावण्यो मुक्तामालाविभूषितः ।
त्रिभङ्गो ललितास्निग्धग्रीवस्त्रैलोक्यमोहनः ॥९॥

वक्षःस्थलञ्चलावण्यं रमणीरमणोत्सुकम् ।
मणिकौस्तुभविद्युद्भामुक्ताहारविभूषितम् ॥१०॥

आजानुलम्बितौ भुजौ केयूरवलयान्वितौ ।
रक्तोत्पलहस्तपद्मौ नानाचिन्हसुशोभितौ ॥११॥

गदा शंखयवच्छत्रचन्द्रार्धाङ्कुशशोभितौ ।
ध्वजपद्मयूपहलघटमीनविराजितौ ॥१२॥

उदरञ्च सुमधुरं लावण्यकेलिसुन्दरम् ।
पृष्ठपार्श्वं सुधारम्यं रमणीकेलिलालसम् ॥१३॥

कटिविम्बं सुधाम्भोजं कन्दर्पमोहनोत्सुकम् ।
रम्यरम्भे इवोरू द्वौ नारीमोहनकारकौ ॥१४॥

जानू द्वौ च सुलावण्यौ मधुरौ परमोज्ज्वलौ ।
पादपद्मौ सुमधुरौ रत्ननूपुरभूषितौ ॥१५॥

जवापुष्पसमरुची नानाचिन्हसुशोभितौ ।
चक्रार्धचन्द्राष्टकोणत्रिकोणयवशोभितौ ॥१६॥

अम्बरच्छत्रकलसशंखगोष्पदस्वस्तिकौ ।
अङ्कुशाम्भोजधनुषा जाम्बवेन च शोभितौ ॥१७॥

अङ्गुल्योऽरुणभाः सम्यङ्नखचन्द्रसमन्विताः ।
श्रीयुतौ चरणाम्भोजौ नानाप्रेमसुखार्णवौ ॥१८॥

एतेषां कृष्णरूपाणां तुलना नहि विद्यते ।
किञ्चिदुद्दीपनार्थाय दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ॥१९॥

श्रीकृष्णचन्द्र का श्रीअंग सुधा लावण्य और माधुर्य में घोटे हुए काजलके समान सुस्निग्ध है, अथवा इन्द्रनीलमणि से निर्मित है, इसमें से नीलकमल की कान्ति बिखर रही है, यह तो नूतन तमाल है, अजी ! यह तो मनोहर मेघ समूह है, जिसमें मरकत मणि की कांति छिटक रही है, नहीं–नहीं, इन काजल नीलम-कमल-तमाल-मेघ-मरकतादि सीमित पदार्थों से क्या ? यह तो असीम सुधालावण्य का समुद्र है ।

ये पीताम्बर धारण करने वाले विविध वनमालाओं से विभूषित,नाना प्रकारके रत्नों से मण्डित अंग वाले ये श्रीकृष्ण नाना प्रकार के केलिरस के सिन्धु हैं । इनके दीर्घ तथा घुँघराले केश अनेक गन्धों से सुवासित हो रहे हैं । नाना प्रकार के पुष्पों

की माला से ग्रथित चूड़ा दर्शकों के मन को हरण कर रही है। सुन्दर ललाट देश तिलक एवं अलकावली से शोभायमान है। लीला से उन्नत भ्रू विलास के द्वारा कामिनियों के चित्त को मोहित कर रहे हैं। घूर्णायमान सुन्दर नेत्र युगल रक्त-नीलकमल की प्रभा के समान हैं।

गरुड़ की चौंच के समान लावण्य युक्त सुन्दर इनकी नासिका है। मणिकुण्डलों से मण्डित कर्णयुगल परम मनोहर हैं। ये कुण्डल द्वय कपोलों पर झूम-झूम कर विशेष शोभा बढ़ा रहे हैं। लावण्य से परिपूर्ण मुख कमल करोड़ों चन्द्रमाओं की कांति का विस्तार कर रहा है। नाना प्रकार की मन हास्य लहरी से चिबुक प्रदेश तो माधुर्य का प्रकाश—दाता बना हुआ है। लावण्य युक्त इनका कण्ठ मुक्तामालासे कैसा विभूषित है। त्रिभंगी अदा और सुन्दर स्निग्ध ग्रीवा तो मानों त्रिलोकी को ही मोहित कर रही है। वक्षःस्थल तो अपने लावण्यों से रमणियों को रमण के लिए उत्सुक कर रहा है जिस पर कौस्तुभमणि और विद्युत् के समानकांति युक्त मुक्ता हार विभूषित हो झूल रहे हैं। केयूर तथा वलय आदि भूषणों से युक्त भुज युगल घुटनों तक लटकते हुए दीर्घाकार हैं।

गदा, शंख, यव, छत्र, अर्धचन्द्र, अंकुश, ध्वजा, कमल, यूप, हल, घट और मीन के चिह्नों से विराजमान दोनों हस्त कमल रक्त-उत्पल के समान शोभायमान हैं। लावण्यकेलियुक्त उदर अति मधुर है। सुधारम्य पृष्ठ एवं पार्श्व प्रदेश रमणियों की केलिलालसा बढ़ा रहा है। अमृत से उत्पन्न कमल के समान कटि भाग कामदेव को भी मोहित कर रहा है। मनोहर कदली वृक्ष के समान उरु युगल स्त्रियों के मन को मोहित करने वाले हैं। मधुर परमोज्ज्वल, सुन्दरलावण्यमय दोनों जंघा है। रत्नतूपुरों से भूषित, चक्र, अर्धचन्द्र, त्रिकोण, यव, अम्बर, छत्र, कलस, शङ्ख, गोष्पद, स्वस्तिक, अंकुश, कमल धनुष और जामुन फलों के चिन्हों से सुशोभित, जवापुष्प की कान्ति वाले अति सुमधुर इनके युगल चरण कमल हैं। अरुणकान्ति वाली पदाङ्गुलियाँ नख चन्द्रमाओं की शोभा से समन्वित हैं। परम शोभामय ये युगल चरण नाना प्रेम सुख के समुद्र हैं। श्री कृष्णचन्द्र के विभिन्न अङ्गों की सुषमा की किसी से तुलना (उपमा) ही नहीं है तथापि भक्तों के हृदय में किंचित् भाव का उदय हो इसलिए यहाँ दिग्दर्शन मात्र दिखाया गया है।

श्री सनातन गोस्वामी कृत—श्रीकृष्णलीलास्तव से:—

सर्वाङ्गसुन्दर स्निग्धघनश्यामाब्जलोचन ।
पीताम्बर सदास्मेरमुखपद्म नमोऽस्तुते ॥
परमाश्चर्यसौन्दर्य माधुर्यजितदूषण ।
सदा कृपास्निग्धदृष्टे जय भूषणभूषण ॥
कन्दर्पकोटिलावण्य सूर्यकोटिमहाद्युते ।
कोटीन्दुजगदानन्दिन् श्रीमद्वैकुण्ठनायक ॥

सुमनोऽलंकृतशिरो गुञ्जाप्रालम्बनावृत ।
पुष्पकुण्डलवर्हस्रक् पत्रवाद्यविनोदक ॥
मनोज्ञपल्लवोत्तंस वनमालाविभूषित ।
वनधातुविचित्राङ्ग वर्हिवर्हावतंसक ॥
गोपीचित्तमहाचौर गोपकन्याभुजङ्गम ।
देहि स्वगोपिकादास्य गोपीभावविमोहित ॥

हे सर्वाङ्ग सुन्दर ? स्निग्ध जलधर की भाँति श्याम वर्ण वाले, कमलनयन पीताम्बर धारी, निरन्तर मुस्कराहट युक्त मुख कमल वाले, आपको नमस्कार है। परम-आश्चर्यमय सौंदर्ययुक्त, माधुर्यछटा मात्र से भक्तों के दोषापहारी निरन्तर कृपा से स्निग्धदृष्टि वाले भूषणों के भूषणस्वरूप आपकी जय हो ! आप कोटि-कोटि कामदेवों से भी अधिक परम लावण्यवान्, कोटि-कोटि सूर्यों से अधिक द्युतिमान, कोटि-कोटि चन्द्रमाओं से अधिक जगत् के आनन्द प्रदायक, परमशोभायुक्त वैकुण्ठ के नायक हैं ॥

आपका मस्तक पुष्पों से अलंकृत है, गले में लम्बी गुञ्जा माला पहने हुए हैं, कानों में फूलों के कुण्डल, शिर पर मयूर पंख, गले में माला, तथा पत्र निर्मित वाद्य बजाकर सखा मण्डली के साथ विनोद कर रहे हैं, सुन्दर पल्लवों का ही शिर पर भूषण धारण कर रखा है, वनमाला से विभूषित हैं, वन की गेरु आदि धातुओं से श्री अङ्ग में चित्र रचना की गई हैं , मस्तक पर मोरपंखका मुकुट धारण किया है। गोपियों के चित्त के परमचोर हैं, गोप कन्याओं के लम्पट हैं तथा गोपी भाव में ही आप विशेष मोहित हैं हे नाथ ! मुझे अपनी प्रेयसी व्रजाङ्गनाओं का दास्य प्रदान कीजिये।

श्री रघुनाथदास गोस्वामीकृत—

सनीरमुदिरद्युतिः पुरटनिन्दि वस्त्रं, दध-
च्छिखण्डकृतशेखरः स्फुरितवन्यवेशः सुखी ।
समृद्धविधुमण्डलीस्तवनलङ्घिवक्त्रे धृतां,
क एष सखि वादयन्मुरलिमद्य बुद्धि हरेत् ॥
—(प्रार्थनामृतम्)

हे सखि ! सजलमेघ के समान अङ्गकान्तियुक्त, स्वर्णनिन्दिपीतवस्त्रधारी, मयूर-मुकुट जिनके शिर पर विराजमान है तथा परमानन्द स्वरूप जिनका वन्यवेश है, जिनका मुख मण्डल शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल को तिरष्कृत कर रहा है उस दिव्य मुख कमल पर मुरली धारण कर बजाने वाला, यह कौन है जो मेरी बुद्धि को हरण कर रहा है।

वपुरतुलतमालस्फीतबाहुरुशाखो,
परिधृतगिरिवर्यस्वर्णवर्णकगुच्छः

कटिकृतपरहस्तारक्तशारवाग्रहृद्यः,
प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥
—(गोपालराजस्तोत्रम्)

जिनका श्रीअङ्ग निरुपम तमाल सदृश है। उसके बाहुरूप एक विशाल ऊर्ध्व शाखा पर धारण किया गया गोवर्धन स्वर्णवर्ण के गुच्छे के समान शोभा पा रहा है, जिसका दक्षिण हाथ कटि प्रदेश पर रखा है, जिसकी लाल लाल चमकती उँगलियाँ दीप्ति से शोभामयी हो रही हैं। श्री गोवर्धन के एक प्रदेश पर विराजमान् गोपालराज (श्रीनाथ जी) परमसुन्दर तथा प्रताप युक्त हैं।

सुभगनवशिखण्डभ्राजदुष्णीषहाराङ्गदवलय-
समुद्राध्वानमञ्जीररम्यः ।
वसनधृसृणचर्चामालिकोल्लासिताङ्गः-
स्फुरति मदनपूर्वः कोऽपि गोपाल एषः ॥
—(मदनगोपाल स्तोत्रम्)

सुन्दर मोर पंख से सुशोभित पगड़ी, हार, अङ्गद वलय, निजनामयुक्त-अगूँठी सुन्दर बजते हुए नूपुर प्रभृति अलंकारों से परिशोभित एवं वस्त्र, कुम्कुम, लेपन, पुष्पमाला से जिनका श्री अङ्ग उल्लसित हो रहा है, यह मदन गोपाल नामधारी कोई मेरे सम्मुख अथवा हृदय में स्फुरित हो रहा है।

श्री प्रबोधानन्दसरस्वती कृत

न्यस्योत्सङ्गे पुलकितवपुः प्रेयसीं वेशयित्वा-
बार बारं स्वमतिकृतश्लाघनो हासयंस्ताम् ।
मध्ये मध्ये तरलतरलोऽनङ्गचेष्टां वितन्वन्-
वृन्दारण्ये सुखयतु सदा राधिकाकामुको नः ॥
—(वृन्दावन महिमामृतम् ६-२५)

जो अपनी प्रियतमा (श्री राधा) का निज हस्त कमल से शृंगार कर फिर उन्हें अपनी गोद में बिठाकर पुलकित हो रहे हैं एवं बारम्बार अनेक प्रशंसा करके उन्हें हंसा रहे हैं तथा बीच-बीच में अतिशय चंचल होकर कामचेष्टाओं का विस्तार कर रहे हैं वृन्दावन में विराजमान ये श्रीराधालम्पट श्रीकृष्ण हमें सदा सुख प्रदान करें।
(वृन्दावन महिमामृतम् ६-२५)

अङ्के पङ्केरुहवरमुखीं नित्यमेव स्फुरन्तीं-
प्रेमार्द्रात्मा पुलकिततनुर्लालयन्हृष्टरोमा ।
कुर्वन्काञ्चिन्नवनवरतिं भिक्षितुं चित्रगोष्ठीं-
वृन्दारण्यव्रततिनिलये भाति राधाविलासी ॥
—(वृन्दावन महिमामृतम् ६-२८)

नित्य श्री श्रेष्ठ कमलमुखी श्रीराधा को गोदी में धारण कर प्रेमार्द्रचित्तसे पुलकित होकर पालन करते हुए तथा किसी अनिर्वचनीय नव नवायमान रति की भिक्षा करते हुए अनेकप्रकार के संलाप में संलग्न श्रीराधाविलासी श्रीकृष्णचन्द्र श्रीवृन्दावन के लतागृह में शोभायमान हो रहे हैं। (वृन्दावन महिमामृत ६-२८)

श्रीकृष्णदास कविराज कृत—

नवीनजलदद्युतिः कनकपीतपट्टाम्बरः,
स्फुरन्मकरकुण्डलोद्धुसृणचारुचर्च्चाञ्चितः ।
प्रफुल्लकमलेक्षणः कनकयूथिकामाल्यवान्-
शिखण्डकृतशेखरः स्फुरति साध्वि कुञ्जे हरिः ॥
भक्तिच्छेदाढ्यचर्च्चां मलयजघुसृणैर्धातुचित्राणि-
विभ्रद्भ्रूयिष्ठं नव्यवासः शिखिदलमुकुटं मुद्रिकाः कुण्डले द्वे ।
गुञ्जाहारं सुरत्नस्रजमपि तरलं कौस्तुभं वैजयन्तीं-
केयूरे कङ्कणे श्रीयुतपदकटकौ नूपुरौ शृङ्खलाञ्च ॥
शृङ्गं वामोदरपरिसरे तुन्दबन्धान्तरस्थं दक्षे-
तद्वन्निहितमुरलीं रत्नचित्रां दधानः ।
वामेनासौ सरललगुडीं पाणिना पीतवर्णां ।
लीलाम्भोजं कमलनयनः कम्पयन्दक्षिणेन ॥
वंशीविषाणदलयष्टिधरैर्वयस्यैः-
संवेष्टितः सदृशहासविलासवेशैः ।
गन्तुं वनाय भवनाद्वनजेक्षणोऽयं-
मुष्णन् मनो मृगदृशामथ निर्जगाम ॥
सौन्दर्यं ललनालिधैर्यदलनं लीला रमास्तम्भिनी-
वीर्यं कन्दुकिताद्रिवर्यममला पारे परार्धं गुणाः ।
शीलं सर्वजनानुरञ्जनमहो यस्यायमस्मादृशां-
विश्वं विश्वजनीनकीर्तिरवतु स्वामी जगन्मोहनः ॥
रूपं भूषणभूषणं नववयः कैशोरमध्यस्थितं वीर्य-
कन्दुकिताद्रिशीलममलं लीला जगन्मोहिनी ।
औदार्यस्वसमर्पणावधि दया यस्याखिलप्लाविका-
कीर्तिविश्वविशोधनी कथमसौ कृष्णोऽस्तु वर्ण्यःक्षितौ ॥

—(गोविन्दलीलामृत)

नवीन मेघ के सदृश जिनकी अङ्गकान्ति है, स्वर्ण के समान पीला रेशमी वस्त्र धारण कर रखा है, कानों में मकराकृत कुण्डल शोभित हैं, समस्त शरीर में सुन्दर सुवासित कुंकुम आदि का लेप हो रहा है, नूतन विकसित कमल जैसे नेत्र हैं, स्वर्ण यूथिका का हार पहन रखा है, शिर पर मयूर पंखों का मुकुट सुशोभित है। हे साध्वि (श्री राधे) ऐसे श्री हरि इस समय कुञ्ज में विराजमान हैं। (गो० ली०-६-३४)

(गोचारण के लिए जाते समय सेवकों ने) श्रीकृष्णचन्द्र के मस्तक पर भक्ति छेद नामक तिलक तथा कस्तूरी कुंकुम आदि से अनेक चित्रों का निर्माण किया, चमकीले नूतन वस्त्र, मोरमुकुट, अँगूठी, कुन्डल, गुञ्जामाला, रत्नहार, कौस्तुभमणि, वैजयन्तीमाला, केयूर, कंकण यथायोग्य अङ्गों में पहिनाए, चरणों में सुन्दर कड़े तथा घूंघरुदार नूपुर धारण कराये। इस प्रकार शृंगार हो जाने पर कमर के बायें भाग के फेंटे में (बजाने का) सींग, इसी प्रकार दाहिनी ओर रत्नों से जड़ी मुरली धारण करी, वाम हस्त में सुन्दर छड़ी, दक्षिण में पीत वर्णका लीला कमल घुमाते हुए, तथा अपने जैसे ही वेशधारी हँसते हुए वंशी, सींग, छड़ी धारी सखाओं को साथ लेकर, और मृगनयनियों के मन को हरण करते हुए कमलनयन श्रीकृष्ण घर से निकल कर वन की ओर जाने लगे। (गो० ली० ४-७४,७६,७७)

जिनका सौंदर्य नारी समूह के धैर्य को दलन करने वाला, लीला लक्ष्मीजी को स्तम्भित करने वाली, गिरिराज को कन्दुक के समान धारण करने वाला वीर्य, जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती इतने निर्मल गुण, सभी को आनन्दप्रदानकारी शील, सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त यश है। ऐसे विश्व विमोहनकारी स्वामी श्रीकृष्ण हम सब की रक्षा करें। (गो० ली० १३-२६)

जिनका भूषणों को भी भूषित करने वाला रूप, मध्यकिशोर अवस्था, पर्वत को गेंद बनाने वाला वीर्य, निर्मल शील, विश्वविमोहिनी लीला, स्वयं तक को दान करने वाली उदारता, सभी को सरोवार करने वाली दया, विश्व को निर्मल बनाने वाला यश है इस पृथ्वी पर ऐसा कौन हो सकता है, जो ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र का पूर्णरूप से वर्णन कर सके। (गो० ली०-१७-७)

श्रीजीव गोस्वामी कृत—

श्रीगोवर्धनशैलरत्नहृदादि प्रक्षिप्तशुभ्रास्तरे-
वामोरुस्थितकञ्जचारुचरणे सव्यं करं दक्षिणे।
न्यस्यन्नन्यमपूर्वरूपमुरलीनाले मनागत्र नः-
स्मेरेणाक्षितटेन सन्दधदहो मन्ये कृपां वर्षति॥
धृतवनमाल्यवतंसलसद्वनवेशततिर्बलसङ्गी।
गिरितटमनु गोचारणकारणवेणुविनोदनरङ्गी॥

विश्वंभ्रमयति कर्षति वर्षति मुदमपि घनगणहारी-
सान्द्रच्छायामनुशीतलतनुरनुसखि सुखसञ्चारी ॥
कुसुमं वर्षन्निजरुचिविततरणसौहृदमेनमुपास्ते-
अम्बुधरः स्फुटमुपगन्ता न च किन्तु च्छत्रमिवास्ते ॥
कान्तिः कान्तिसमूहजातघनजिल्लावण्यमीदृग्घन-
प्रोद्यन्मौक्तिक जेतृरूपवरिमा विश्वादिकृन्मोहनः ।
एवञ्चैदजितस्य सार्वदिकता कैशोरके वा तदा-
पूर्णे कः कविताभियाञ्चवनवास्तत्रापि यत्र श्रियः॥
—(श्रीगोपालचम्पू से उद्धृत)

श्रीगिरिराज की मणिमय शिला पर देदीप्यमान शुभ्र वर्ण का एक आसन बिछा है, उस पर श्रीकृष्ण विराजमान हैं, बैठने की मुद्रा कितनी सुन्दर है—वाम उरु पर अपना दक्षिण सुकोमल चरण रख लिया है, उस पर आपने अपने वामहस्त को रख लिया है और दक्षिण हस्त को पास में ही शिला पर रखी मुरली के ऊपर रख लिया है, इस प्रकार बैठे आप कटाक्ष पूर्ण मन्द मन्द मुस्करा रहे हैं—प्रतीत होता है श्रीकृष्ण अपनी इस तीखी किन्तु मीठी दृष्टि से हमारे ऊपर कृपा की दृष्टि कर रहे हैं।

सखि ! श्रीकृष्ण ने वन्यवेश के द्वारा शिरोभूषण आदि को सुसज्जित कर रखा है, वन्यवेश में वनमाला भी अद्भुत शोभा पा रही है, और श्री बलराम जी के साथ गिरिराज की तलैटी में गौचारण के साथ वेणु विनोदलीला करते हुए घूम रहे हैं, विश्व को भ्रमित करने वाली आकर्षक लीलाओं के द्वारा ये आनन्द की वर्षा कर रहे हैं। शीतलशरीर वाले सुख संचारक सजल मेघ भी इस कृष्णबलराम की युगल जोड़ी पर आकर्षित होकर वर्षाबिन्दु की पुष्पवृष्टि न कर अपनी निविड़घनच्छाया रूप छत्र द्वारा सेवा—उपासना कर रहे हैं।

अहा! इस किशोर कृष्ण की कान्ति कितनी अद्भुत है, अपनी कान्ति से जिन्होंने कान्ति समूह मेघ की कान्ति को जीत लिया है, मुक्तायुक्त (सारसपंक्तियुक्त) जलधर को भी तिरस्कृत करने वाला जिनका रूप-लावण्य विश्व को मुग्ध बना रहा है। सखि ! अभी तो अजित श्रीकृष्ण ने किशोरावस्था के प्रथम सोपान पर ही चरण रखा है—तब इनका सौंदर्य सर्वतोधिक प्रकाश पा रहा है और जब ये पूर्ण किशोरावस्था को प्राप्त होंगे, तब कौन कवि इनके सौन्दर्यवर्णन करने में समर्थ होगा ?

व्रजरस माधुरी एक विवेचन

व्रजरसमाधुरी क्या है ? यह एक अति गम्भीर रसिक जन वेद्य विषय है, रस जीवन की एक धारा है, धारा के सूखने पर जीवन भी सूख जाता है, रूखा हो जाता है, रस शास्त्र के व्याख्याताओं ने लौकिक रस की परिणति–चरम सीमा स्त्री पुरुष के सम्प्रयोग में मानी है, किन्तु आध्यात्मिक जगत के व्याख्याकार लौकिक रस को मात्र इन्द्रिय जन्य विकार मानते हैं, वे इसके वास्तविक रूपको श्रुति के आधार पर—"रसो वै स :"–साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण को ही शुद्ध सात्विक अविकृत नित्य वर्तमान रसरूप मानते हैं, यही रस व्रज भूमि में मूर्त्तिमन्त हुआ है, उसी की माधुरी व्रज के वृक्ष, लता, गुल्य और कण-कण में व्याप्त है—इसी को व्रजरसमाधुरी कहते हैं।

रस शास्त्र के आद्याचार्य श्री भरत मुनि ने रस की अभिव्यक्ति का लक्षण इस प्रकार किया है :—

'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद् रस निष्पत्तिः'

रसोपत्ति के कारण को विभाव कहते हैं, पश्चात् कार्य रूप में परिणत को अनुभाव और अभिमुख होकर चलने वाले सहकारी भाव को व्यभिचारी भाव कहते हैं, इन सबके संयोग से—सम्बन्ध से जो एक विलक्षण अनुभूति उत्पन्न होती है—उसे रस कहते हैं। तात्पर्य यह है कि कारण को, विभाव कार्य को, अनुभाव और सहकारी भाव को व्यभिचारी भाव कहते हैं।

अलङ्कार कौस्तुभ में इस प्रकार बताया है :—

'रतिश्चेतो रञ्जकता सुखभोगानुकूलकृत्।
सा प्रीति मैत्री सौहार्द्र भावसंज्ञां च गच्छति ॥'

चित्त को रंजित करने वाले धर्म को रति कहते हैं, जो सुख भोग का आनुकूल्य उत्पन्न करती है, इस चित्त रंजन को प्रीति, मैत्री, सौहार्द्र और भाव संज्ञा भी दी जाता है।

इस रति के दो भेद हैं—

'चेतो रञ्जकता द्विधा सम्प्रयोग विषया, असम्प्रयोग विषयाच।'

या सम्प्रयोग विषया सा रति परिकीर्त्तिता।
सम्प्रयोगः स्त्री पुरुष व्यवहारः सतां मतः॥
असम्प्रयोग विषया सैव प्रीति निगद्यते।
सैव देवादिविषया रतिर्भावश्च कथ्यते॥

चित्त को रंजन करने वाली रति के दो भेद हैं, १–सम्प्रयोग, जो स्त्री-पुरुष के मध्य प्रयुक्त है। २–असम्प्रयोग, जो इन्द्रिय विकार शून्य चित्त का रञ्जन करती है—वह रति अर्थात् प्रीति है। असम्प्रयोग विषयारति–चित्तरञ्जकता प्रीति देवादि में दर्शित होती है, जैसे द्रोपदी कृष्ण की प्रीति असम्प्रयोग विषया सख्यता–प्रीति है।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ति कहते हैं :--

"देवस्य श्रीकृष्णस्य देवत्वं सर्वव्यापकत्वादि रूपेण या चेतो रञ्जकता रति सैव भावः ।"

अर्थात्--श्रीकृष्णदेव की सर्वव्यापकत्व वाली रति को ही भाव कहते हैं ।

अलङ्कार कौस्तुभकार ने उक्त रस को तीन प्रकार का माना है, वे कहते हैं--

"प्राकृताप्राकृताभासभेदोदष भिधामतः"

अर्थात्---प्राकृत-लौकिक, अप्राकृत-श्रीराधाकृष्ण विषयक, अनौचित्यादि को आभास कहा गया है ।

भक्ति ग्रन्थकार प्राकृत रस को रस नहीं मानते, उनका कहना है कि—कृमि विष्ठा, रक्त, चर्म, मांस, मज्जा, अस्थि आदि में रस मानना एक भ्रान्ति है, नश्वर प्राकृत नायक-नायिकाओं में अविकृत रस टिक नहीं सकता ।

रसों की संख्या--

रसों की संख्या में कोई आठ और कोई नौ रस मानते हैं । श्रीमम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में--शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत--इन आठ को ही रस माना है । निर्वेद को स्थायी भाव मानकर 'शान्त रस' को भी नवम रस की संज्ञा दी है ।

साहित्य दर्पणकार ने भी आठ ही रस स्वीकार किए हैं, पुनः शान्त को नवम की संज्ञा देकर 'श्रीभरत मुनि' के अनुसार 'वत्सल को दसवां रस' स्वीकार किया है, यथा--

"शृङ्गारहास्य करुण रौद्रवीर भयानकाः ।
विभत्साद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः ।।"
"वत्सलञ्च रस इति तेन स दशमो रसः ।
स्फुटं चमत्कारितया वत्सलञ्च रसं विदुः ।।"

स्थायी--वत्सलता स्नेह--

अलङ्कार कौस्तुभकार कवि कर्णपूरने पहले नाट्यगत आठ रसों का उल्लेख किया है, बाद में 'शान्त' को भी नवम रस स्वीकार कर लिया है । वे पुनः भोज कथित वात्सल्य एवं 'प्रेम' को उनके साथ जोड़ देते हैं, इस तरह कौस्तुभकार ने ग्यारह रस स्वीकार किए हैं ।

श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्री श्रीधर स्वामिपाद ने श्रीकृष्ण के कंस की सभा में पहुँचने पर वर्णित—

"मल्लाना मशनिर्नृणां नरवरः"--श्लोक की व्याख्या में दस रसों को स्वीकार किया है । उन्होंने 'शान्त' के साथ 'भक्तिरस' को भी माना है ।

श्रीवल्लभाचार्य भी दस रसों का ही प्रतिपादन करते हैं :--

रौद्रोऽद्भुतश्च शृङ्गारो हास्यं वीरो दया तथा ।
भयानकोऽपि वीभत्सः शान्तोभक्तिरसस्तथा ।
एतान् दर्शयितुं भावान् हरिरेवबभौ महान् ।।

किन्तु, श्रीचैतन्य महाप्रभुचरणानुगत श्रीजीवगोस्वामी चरण ने रसों की संख्या बारह स्वीकार की है । श्रीमधुसूदन सरस्वती पाद के 'भक्ति रसायन' की व्याख्या में सरस्वती जी के कथनानुसार ही उन्होंने क्रमशः—रौद्र, अद्भुत, शुचि, सख्य हास्य, वीर, वत्सल, करुण, भयानक, वीभत्स, शान्त तथा प्रेम भक्ति—ये बारह रस माने हैं ।

इस प्रकार ये रसों की संक्षिप्त व्याख्या पूर्वाचार्यों के मतानुसार है रस एक परमदुर्बोध अगम्य गति है, अतः यहाँ केवल संकेत मात्र दिया गया है । व्रज लीलाओं में न्यूनाधिक सभी रस विद्यमान है, किन्तु सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार की व्रजभूमि में प्रधानता है, श्री नन्दयशोदा, गोप बालक और श्रीराधाकृष्ण की समस्त रसमयी लीलायें इन्हीं रसों में ओत-प्रोत है, इनमें भी उत्तरोत्तर एक दूसरे में समाये रहते हैं, सख्य वात्सलता में और सख्य वात्सल्य शृङ्गार में अन्तर्भूत हो जाते हैं, इसीलिए यहाँ व्रजरस माधुरी में शृङ्गार या कान्ताभाव को ही सर्वोत्तम माना है, जिसकी एकमात्र सूत्रधार वृषभानुनन्दिनी कृष्ण प्रेयसी महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ही है ।

सख्य रस का स्वरुप—

सख्य रस प्रेयोभक्ति रस है, यह स्थायी भाव है, इसमें सम्भ्रम शून्य विश्रम्भ-रति है । सम्भ्रम राहित्य इसका गुण है, द्विभुज मुरलीधर यशोदानन्दन नन्दकिशोर ही यहाँ विषयालम्बन है । यहाँ आश्रयावलम्बन हैं—कृष्ण वयस्क सखा गण । श्रीदामा-स्तोक कृष्ण आदि । उद्दीपन के लिए श्रीकृष्ण की वयः रूप, वेणु,परिहास, परिक्रमादि उपादेय हैं । अनुभाव में—बाहुयुद्ध, कन्दुक क्रीड़ा, द्यूत क्रीड़ा, आसन, दोला, जलकेलि, मयूर, बन्दरों आदि के साथ क्रीड़ा होती है । दास्य भाव से भी अधिकतर स्फुरित अष्ट-सात्विकभाव यहाँ उत्पन्न होते हैं । सञ्चारी भाव भी दास्य से अधिक हैं । सखाओं के चार भेद हैं :—

(१) सुहृद=वलभद्र आदि, २—सखा=देवप्रस्थआदि, ३—प्रियसखा= श्रीदामा आदि, ४— प्रियनर्मसखा=उज्वल सुवल आदि ।

इनके कुछ उदाहरण देखिये, व्रजवासी सखाओं का वर्णन 'भक्तिरसामृतसिंधु में किया गया है :—

क्षणादर्शनतो दीनाः सदा सहविहारिणः ।
तदेक जीविताः प्रोक्ता, वयस्या व्रजवासिनः ।।
अतः सर्व वयस्येषु, प्रधानत्वं भजन्त्यमी ।

एक क्षण को भी श्रीकृष्ण का दर्शन न मिलने पर जो अत्यन्त दीन हो जाते है, श्रीकृष्ण ही जीवन—आधार हैं और श्रीकृष्ण के साथ विहार करने का जिनका अह-निश स्वभाव है, वे व्रजवासी सखा के नाम से प्रसिद्ध है ।

बलानुज सदृक्वयो गुणविलासवेषश्रियः,
प्रियङ्करण वल्लकी दलविषाणवेण्वङ्किताः।
महेन्द्र मणि हाटक स्फटिकपद्मरागत्विषः,
सदाप्रणय शालिनः सहचराः हरेः पान्तु वः॥

आयु,गुण,वेश-भूषा,विलास,बिहार जिनके श्रीकृष्ण के ही समान हैं और सालम-मिश्री के पत्रों से विरचित शृङ्ग-एवं वेणु जिनके कर कमलों में शोभित है, अङ्ग की कान्ति इन्द्र नीलमणि, स्फटिकमणि और पद्मरागमणि जैसी है, ये सदा श्रीकृष्ण के परम स्नेही स्वभावतः प्रणयशील हैं, श्रीकृष्ण के ये सहचर तुम्हारी रक्षा करें, व्रजरस में सख्यमाधुरी को एक अनौखा स्थान प्राप्त है, व्रज के रसिकाचार्यों ने श्री रूप, सनातन, जीव गोस्वामी प्रभृतिने संस्कृत वाङ्मय को सख्य रस से भी खूब पूरित किया है, इनके पश्चात् के अन्य व्रजभाषा के रसिकाचार्य कवियोंने तो इस रस की भर-मार ही कर दी है देखिये वन गमन के समय नन्दमहल से निकल कर गोपमंडली के साथ जब वन वीथियों की राह पकड़ी तो श्रीकृष्ण इतने प्रसन्न हुए-जैसे पिछड़े में बद्ध पक्षी मुक्त बंधन होकर स्वच्छन्द आकाश में घूमता है —

कृष्णमत्तेभ उन्मत्तो घोषदृग्दृढशृङ्खलात्।
उच्छृङ्खलश्चपलः स्वैरी काननेऽन्य इवाभवत्॥

अर्थात् श्री कृष्ण सखामंडल के साथ नन्द भवन से चल कर मां और बाबा तथा अन्य व्रजवासियों की नेत्ररूप दृढ़ शृङ्खला से छूट कर वन में कूदते फांदते विलक्षण चंचल एवं स्वेच्छाचारी होगये। जैसे मदोन्मत्त गज बंधन से छूट कर उछलता हुआ चलता है, ग्वालबालों के साथ श्रीकृष्ण का गमन भी वैसा ही होरहा है।

इतना ही नहीं—वन्य पशुओं, पक्षियों,विविधलतावितानों, कदम्बकुंजो,यमुना-पुलिन और हरित श्यामल दूर्वा दलों पर विचरते—इन सबके साथ श्री कृष्ण कितने आनन्दित होरहे हैं, नीचे के श्लोक से स्पष्ट झलकता है :—

नृत्यन्ति गायन्ति हसन्ति गोपाः,
कूर्दन्ति नन्दन्ति परिस्खलन्ति।
नर्माणि तन्वन्ति लसन्त्यथैते,
बन्धाद् विमुक्ताः कलभोत्तमा वा॥

जैसे घने जंगलोंमें गजराज—शिशु (बच्चा हाथी) स्वच्छन्द उन्मुक्त होकर लता पता और वृक्षों को रौंदता हर्षोल्लसित घूमता है, वैसे ही आज श्री कृष्ण भी बंधनमुक्त होकर क्रीड़ारत होरहे हैं, वे कभी नृत्य करते हैं, कभी गलबाहीं देकर दौड़ लगाते हैं, कभी गाते हैं,कभी हँसते हैं,कभी किलकारी लगाते हैं, कभी पृथ्वी पर लुंठन करते हैं कभी हासपरिहास करते हैं और कभी आनन्द विभोर हो जाते हैं—इस प्रकार नानाप्रकार के खेलों में मस्त हो जाते हैं।

एक व्रजभाषा के पद में श्रीकृष्ण अपने मित्र सखाओं से कहते हैं :—

चलो मित्रगण वन को चलिये ।
वनमें आनन्द खेल मचावें, गलवाहीं दे वन में विहरिये ॥
रोक नहीं तहँ मातपिताकी, मन अनुकूल स्वतंत्र विहरिये ।
प्राण जीवन धन तुम मेरे हो, तुमविनु सुख कबहू नहिं लहिये ॥
वंशीवट की शीतल छैयाँ, विविध खेल करि, आनंद लहिये ।
मधुर अमृत सम फल वृन्दावन, हिलिमिलि कै सब प्रेम सों खहिये ॥
विविधपवन शीतल यमुना तट, तुमविनु ये सबही दुख दहिये ।
परमप्रेम पूरण तुमविनु कोऊ दरशत नाहिं मित्र उर रहिये ॥
सुनत श्याम की वाणि मित्रगण, गद्गद स्वर, रोमाञ्चित कहिये ।
हमरे प्राण कोटि प्रिय प्यारे, श्याम यहीं हमरे मन वसिये ॥

सखामंडली के साथ गौचरण के लिये वन जाते समय कृष्ण बलराम की शोभा :—

अतिहि सुधर बन गमन श्याम को ।
मोर मुकुट शिर कटी काछनी, गल वैजन्ती माल को ॥
पग नूपुर कटि तट में कौंधनी, कङ्कण कर मणि स्वर्ण को ।
बाजूबन्द भुजनासा मोती, मस्तक तिलक है भाल को ॥
अँगुरिन सोहत रतन मुद्रिका, श्रवण है कुण्डल हाल को ।
भूषण वेष अवस्था सम सब, चलत सखा गण श्याम को ॥
नीलाम्बर पहिने बलदाऊ, प्रेम मगन गज चाल को ।
श्री बलदाऊ शृङ्ग बजावत, कृष्ण बजावत वेणु को ॥
उच्च पुच्छकरि कर्ण उठाये, प्रेम मगन गति धेनु को ।
भोजन भार मस्तकनि ऊपर, चलत दासगण श्याम को ॥

और इस प्रकार वन में पहुँच कर श्री कृष्ण मित्रों से कहते हैं—भैया ? तुम सब अपने अपने गुण प्रकट करो, तब सखागण—

केचिद् वेणून् वादयन्तो, ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ।
केचिद् भृङ्गैः प्रगायन्तः, कूजन्तः कोकिलैः परे ॥

सखाओं का एक मंडल कहता है, श्यामसुन्दर ! हमको बहुत अच्छी वंशी बजाना आता है ऐसा कह कर वे वंशी बजाने लगते हैं, तब तक दूसरा दल कहता है, भैया ! वंशी बजाना कोई चतुरता नहीं, देखो हम शृङ्ग में मधुर गाना सुनाते हैं, फिर कोई कहता—देखो ! हम भृङ्ग और कोकिल के स्वर में कैसा सुन्दर गाते हैं :—

कोई कोकिल कूक सुनि, तामें सुरहिं मिलाय ।
गावत है अनुराग भरि, रागिनि राग सुनाय ॥

और इसके पश्चात् यमुना पुलिन में वन भोजन होता है, क्रमशः छोटे गोप-बालकों का मंडल श्रीकृष्ण के चारों ओर बैठ जाता है, अपने अपने घर से लाई हुई छाक (भोजन) खोलकर सब बैठ जाते हैं, मित्र मंडल में बैठ कर भोजन करने का स्वाद अद्भुत ही होता है, यहां प्रत्येक सखा यह समझता है कि श्रीकृष्ण सर्वाधिक मुझसे ही प्रेम करते हैं, सखा कहते हैं—श्रीकृष्ण ! तुम्हारे ओष्ठों से छूआ हुआ कोई भी पदार्थ कितना मीठा हो जाता है, देखिये—एक बंगलापद कर्त्ता उद्धवदास क्या कहते हैं :—

तोर आइठा बड़ मिठा लागे कानाइ रे।
खाइते बड़ सुख पाई, ताहि तोर आहण खाई,
खाइते जाइते हैते दिते हैलो भाइरे॥
ओ राँगा अधर माझे, ना जानि कि मधुर,
आछे आमार तुम्हार चांद मुखेरबलाइ जाइरे।
एइ उपहार ले ओ, खाइयां आमादिगे,
दे ओ, ए दास उद्धवे कितुदिने पोइरे॥

श्रीकृष्ण के सखा मंडल की भोजन लीला ब्रह्मादि को भी मोहित करती है, एक दूसरे से छीन कर, एक दूसरे के मुख से निकाल कर दूसरे के मुखमें बलात् ठूंसकर खाने की दिव्यलीला अद्भुत है :—

बैठे सखा वृन्दावन में चहुँ ओरते घेरि के नन्दकिशोरे।
खाय खवाय हँसाय हँसे, अति आनन्द मांचिरह्योतेहि ठोरे॥
श्रीरघुराज लखैं सब देव कहै जो गहे मख भाग करोरे।
ग्वालन बालन के करते सो गुपाल छुड़ावत माखन कोरे॥

भोजन के पश्चात् विश्राम फिर उत्थापन और फिर नाना प्रकार की क्रीड़ाओं ओंमें आसक्त कृष्ण बलराम को वन में संध्या हो जाता है, गौएं रभाने लगती हैं, तब नन्दगांव लौटने की तैयारी में वंशी में सभी गौओं का नाम ले लेकर पुकारते हैं—

पद्मे हिही हरिणि रङ्गिणि कञ्जगंधे,रम्भे हिही चमरि खञ्जनि कज्जलाक्षि।
शन्दे हिही भ्रमरिके सुनदे सुनन्दे, धूम्रे हिही सरलि कालि मरालि पालि॥

वंशीमेंनाम लेकर गौओं को श्रीकृष्ण बुला रहे हैं—हे पद्मे ! हे हरिणी ! हे रंगिणी ! हे कञ्जगंधे ! हे रम्भे ! हे चमरि ! हे खञ्जनि ! हे कज्जलाक्षि ! हे शन्दे ! हे भ्रमरिके ! हे सुनदे ! सुनन्दे ! हे धूम्रे ! हे सरलि ! हे कालि ! हे पालि ! हे गंगे ! हे तुङ्गि ! हे पिशाङ्गि ! हे धवले ! हे कालिन्दी ! हे श्यामे ! हे हंसि ! हे कुरंगि ! हे कपिले ! हे गोदावरि ! हे शोणे ! हे श्वेणि ! हे त्रिवेणी ! हे यमुने ! हे चन्द्रालिके ! हे नर्मदे !—आदि अनन्त नामो को पुकार-पुकार कर गौओं को एकत्रित कर ब्रजगाँवकी ओर चलने को प्रस्तुत होते हैं।

दुग्ध भरे स्तन भार से मन्द गति वाली गौएँ हम्बारव करती श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लेती हैं, भिन्न भिन्न श्रेणियों की गौएँ आप से आप पङ्क्तिबद्ध होकर खड़ी हैं और तब गौओं को आगे करके पीछे ग्वाल मंडल वंशीध्वनि अथवा खेलकूद करता नन्द गोकुल को चलता है :—

धेनुवृन्दमनुमन्दमयन्तं, वेणुगीतममृतं विसृजन्तम् ।
रेणुरुषित चलालकवन्तं, केनु वीथ्य समियुर्नमुदन्तम् ।।

गोरज से विभूषित चञ्चल अलकावलि युक्त श्रीकृष्ण जब धेनु समूह के पीछे अनुगमन करते हुए वंशीध्वनि करने लगे तो कौन ऐसा जन होगा जो असीम आनन्द में डुबकी न लगाता होगा—

लटकत चलत सखन सुखदानी ।
सध्या समय सखा मंडल में, सोहत तन गोरज लिपटानी ।।
मोर मुकुट गुञ्जापियरोपट, मुख गुञ्जत मुरली मृदुवानी ।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधारी आये वनते,लै आरति वारति नंदरानी ।।

नन्द भवन में पहुँचने पर गोपियां उल्लासपूर्ण चाव भरे हाव-भाव से श्रीकृष्ण का स्वागत करती हैं, मां यशोदा आरति उतारती हैं, तब श्रीकृष्ण ग्वालमंडल के साथ गोष्ठ में गोदोहन को जाते हैं। गोदोहन से लौट कर सखा मंडल के मध्य रात्रि भोजन, फिर राज सभा में मनोरंजन होता है, तदनन्तर मित्रमंडली के मध्य ही शयन करते हैं—इन सभी लीलाओं में सामयिक साधन या उपकरणों की महीयता कितनी हो सकती है—कल्पनातीत है, इन दिव्यातिदिव्य लीलाओं में भाव राज्य स्थायी रहता है, रसराज ही यहाँ व्यवस्थापक है, रस यहां पोषक होता है, नियामक नहीं। जिस-जिस भाव की लीला आती है, रस उसमें अभिवृद्धि करता है। सखा मंडली के मध्य सख्य रस पूर्ण रूप में विराजमान है। वास्तव में पूर्ण परब्रह्मसच्चिदानंद घन श्रीकृष्ण का मित्र होना भी क्या साधारण बात है? श्रीमद्भागवत कार ने ठीक ही कहा है—

अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानंदं पूर्णब्रह्मसनातनम् ।।
इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या, दास्यं गतानां पर दैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण, साकं विजह्रुः कृत पुण्यपुञ्जाः ।।

अर्थात् नन्दगोपवालकों के भाग्य को क्या कहा जाय, जोकि पूर्ण ब्रह्म सनातन परमानन्द मूर्ति श्रीकृष्ण जिनका मित्र है। ज्ञानीजन जिसकी केवल अनुभूति ही प्राप्त कर पाते हैं, दास भक्त, केवल परम देवता समझ कर जिसकी आराधना करते हैं, मायाश्रितों को केवल नररूप दिखाई देता है—उस अद्भुत रूप श्रीकृष्ण के साथ सखाओं ने विहार किया है।

ब्रजरस माधुरी में वात्सल्यरस

वात्सल्यरस का स्थायीभाव वात्सल्य रस ही है, इसका गुण स्नेह है, विषयालम्बन—नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं, आश्रयावलम्बन—श्रीकृष्ण के गुरुजन, श्रीनन्द, यशोदा,

रोहिणी तथा अन्य मान्या गोपीगण हैं। उद्दीपन के लिये--कौमार अवस्था, रूप, वेश, चापल्य, चांचल्य, हास्य आदि प्रमुख हैं। अनुभाव प्रकट होने पर--मस्तक आघ्राण, आशीर्वाद, आज्ञादान, लालन-पालन, प्रतिक्षण तत्संबंधी कार्यों में व्यस्तता, हितकारी वचनों का प्रशिक्षण, आलिङ्गन, चुम्बन, तिरस्कार आदि सभी संभव है।

वात्सल्य रस के कुछ उदाहरण देखिये :--मां यशोदा अपने नन्हे मुन्हे श्याम-सुन्दर को अंगुली पकड़कर 'पैयां पैयां' चलना सिखारही है :--

सिखवति चलन जसोदा मैया !
अरबराइकर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ॥
कबहुँक सुन्दर बदन विलोकति, उर आनन्द भरि लेति बलैया।
कबहुँक कुल देवता मनावति, चिर जीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया ॥
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति, इहिं आंगन खेलौ दोऊ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ॥

× × ×

कान्ह चलत पग द्वै—द्वै धरनी।
जो मन में अभिलाष करति ही, सो देखति नन्द - घरनी ॥
रुनुक - झुनुक नूपुर पग बाजत, धुनि अति हीं मन हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरतहीं, सो छवि जाइ न बरनी ॥
व्रज जुवति सब देखि थकित भई, सुन्दरता की सरनी।
चिरजीवहु जसुदा को नन्दन, सूरदास कौं तरनी ॥

इसके पहले माता यशोदा प्रातःकाल विविध भाँति से गुपाल लाल को जगाती हैं, श्रीकृष्ण जब नहीं उठते तो खीज कर कहती हैं कि इसको न जाने यह क्या बुरी आदत पड़ गई है कि प्रातः उठने का समय जब होता है--तब यह और अधिक पीताम्बर ओढ़ कर सोता है, तब फिर मैया लालन-पालन द्वारा चूमचाट कर बहलाती है और कहती है, बेटा ! सुना है तू मुरली बहुत अच्छी बजाने लगा है, भला मुझे भी तो सुना, कैसी मुरली बजाता है। सुनते ही श्यामसुन्दर पीताम्बर फेंक उठ बैठते है, नेत्रों को मलते हुए बंशी बजाने लगते हैं। तब मां माखन, मिश्री, दधि-ओदन खिलाने लगती है--

कौन परी मेरे लालहिं बानि।
प्रात समै जागन की बिरियाँ, सोत है पीताम्बर तानि ॥
संग सखा ब्रजबाल खरे सब, मधुवन धेनु चरावन जान।
मातु यशोदा कब की ठाढ़ी, दधि ओदन भोजन लिये पान ॥
तुम मोहन ! जीवन धन मेरे, मुरली नेक सुनावहु कान।
यह सुनि श्रवण उठे नन्दनन्दन, बंशी निज माँगी मृदु बान ॥

जननी कहति लेहु मनमोहन, दधि ओदन घृत आन्यौ सान ।
सूर बलि बलि जाउँ बेनु की,जिहि लगि लाल जगे हि मान ।।

श्यामसुन्दर गोपवालकों के साथ खेलकूद में मस्त होगये हैं। न खाने की फुरसत, न नहाने की सुध, धूलि धूसरित अङ्ग की कान्ति कितनी देदीप्यमान होरही है। मां यशोदा पकड़ कर लाती है—चल, कन्हैया, तुझे स्नान कराऊंगी, स्नान का नाम सुनते ही लोट पोट होगये, मचल गये। नहीं-नहीं, मैया ? मैं नहाऊंगा नहीं। हम नहीं, हम नही,कह कर रोने लगे। मां समझाती है, देखो लाल ! सुन्दर सुगंधियुक्त उवटन से तुम काले से गोरे हो जाओगे, सब गोपियां तुम्हें काला-काला कह कर खिजाती हैं। फिर मैया उवटन सामग्री को छिपाकर पीछे रख देती है, कहती है, लो, आज उवटन नहीं करूंगी। ये स्वच्छ यमुना जल है, इसी से स्नान कराऊंगी —

जसुमति जबहि कह्यौ अन्हवावन, रोइ गये हरि लोटत री ।
तेल उवटनौ लै आगे धरि, लालहि चोटत-पोटत री ।।
मैं बलि जाउँ न्हाउ जनिमोहन, कतरोवत बिनु काजै री ।
पाछैं धरि राख्यौ छुपाइ कै, उबटन तेल समाजैं री ।।
महरि बहुत बिनती करि राखति, मानत नहीं कन्हैयारी
सूर श्याम अतिही बिरुझाने, सुर मुनि अन्त न पैया री ।।

प्राचीन संस्कृत कवियों की दृष्टि में भी इस मनोहर बाल-मराल का दर्शन कीजिये, श्रीमङ्गल कवि मां यशोदा का दुग्धपान करते हुए बाल कृष्ण से ध्यानियों की रक्षा की भीख मांग रहे हैं, बात यह हुई कि बड़ी कठिनाई से मां यशोदाने छोटे-छोटे गोप बालकों के सहयोग से आज श्रीकृष्ण को विधिवत् स्नान कराया है, इन्होंने तो चाहा था कि रो-पीट कर स्नान से पीछा छुड़ालें, पर माँ कब मानने वाली थी। स्नान के बाद अपनी झेंप मिटाने को नटखट ने मां यशोदा को तंग करना शुरू कर दिया, आप बोले मैया ! मैया !! मुझे दूध पिलादे। परन्तु उन्हें तो मां से बदला लेना था,—चट से बोले, मां ! गोरी, धौरी, कारी—गैया के दूध नहीं, मैं तो तेरा दूध पीऊँगा। मां आश्चर्य से कहने लगी, कन्हैया ! तू इतना बड़ा हो गया, अभी तक तूने मेरा दूध पीना नहीं छोड़ा और आप लपक कर मां की गोद में बैठकर मां यशोदा का स्तन पान करने लगे है। क्या ही सुन्दर शोभा है ? अर्द्ध निमीलित नेत्रों से श्रीकृष्ण मां को स्तन का पान कर रहे हैं, यद्यपि उनकी तृप्ति के लिये एक ही स्तन पर्याप्त है, परन्तु आपने लालच वश दूसरे स्तन पर भी छोटी छोटी अंगुलियों के हाथ से कब्जा कर रक्खा है। इस दशा को देखकर मां का शरीर पुलकित हो उठा है, श्रीकृष्ण की ठोड़ी पर अंगुलियाँ रखकर मुख कमल को ऊपर उठाती हैं, तब श्रीकृष्ण किंचिद् मन्दहास्य युक्त मुख को ऊपर उठा देते हैं—उस समय मुख कमल में से दुग्ध कणों से भी अधिक धवल कान्तिवाली दन्तच्छटा फूट पड़ती है—जो ज्ञानियों और ध्यानियों के मन को भी चंचल कर देती है :—

अर्धोन्मीलितलोचनस्यपिवतः पर्याप्तमेकं स्तनम्,
सद्यः प्रस्तुत दुग्धदिग्धमपरं हस्तेन समार्जतः।
मात्राचाङ्ग लि लालितस्य वदने स्मेरायमाने मृदु—
विष्णोः क्षीरकणोरूधामधवला दन्तद्यु ति पातु वः ।।

गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्य श्रीरघुनाथदास गोस्वामा तो इस तमाल दलनील द्यु ति—श्रीकृष्ण के नाम पर माला लेकर बैठ जाते हैं, क्यों नहीं ? आखिर देखिये तो कितना मनोहारी दृश्य है। श्रीकृष्ण मां के आगे घुटनों के बल भूमि पर विचरण कर रहे हैं, मां उन्हें नाना भांति से खिला रही है, कभी कभी मां जब श्रीकृष्ण के बड़े बड़े नीलकमल जैसे नेत्रों पर अपनी फूँक मारती है तो श्रीकृष्ण के नेत्र चञ्चल हो उठते हैं और वे किलकारी देकर हँसने लगते हैं, उस नवीन हास्य-सुधा से मुख-कमल अतिशय मधुर प्रतीत होने लगता है—ऐसा तमाल दलनील-कान्ति वाला बालक भजन करने से ही मिल सकता है।

और जब वाल गोपाल कृष्ण तोतली बोली बोलने लगते हैं तो कलेजे पर लकीर बँधती चलती है, रसभरी मीठी तोतली बोली का रसपान कीजिये—

रोटी सों ओटी कहै, कहै क्षीर सौं छीर।
छोटो सौ सुत नन्द कौ, हरै हमारे पीर ।।

अष्टछाप के कवियों में श्रीपरमानन्द जी तो इस वाल लाल को ही अपना ललना मान बैठे हैं, सचमुच इन की मीठी बोली रुनझुनचाल, चौड़ी आँखों में काजल, तिलक, डिठौना और समस्त अङ्ग की वेशभूषा—सभी तो नयनाभिराम चित्ताकर्षक हैं :—

माई ! मीठे हरि के बोलना ।
पाँय पैंजनिया रुनझुन बाजै, आँगन आँगन डोलना ।
कज्जल तिलक कंठ कठुलामनि, ,पीताम्बर को चोलना ।
परमानन्ददास को ठाकुर गोपी, झुलावत मो ललना ।।

एक दिन मां यशोदा चंचल चपल श्रीकृष्णको गोदी में बैठाकर लाढ लड़ा रहीं थी, उसी समय वत्सला गोपीयों के यूथ के यूथ एकत्रित हो गये, और श्रीकृष्ण के साथ वात्सल्यपूर्ण छेडछाड़ शुरु करदी, कहने लगी—कृष्ण ! तुम्हारा मुख कहां है? नेत्र कहां हैं ? नासिका कहां है ? कान कहाँ हैं ?और लाला तुम्हारी चोटी कहाँ हैं ? तब श्रीनन्दनन्दन उन-उन स्थानों पर अथवा कान की जगह नासिका पर नासिका की जगह चोटी पर या चोटी की जगह नेत्रों पर हाथ रखकर कहते हैं— ये हैं! सुनकर गोपियां प्रमुदित होती हैं, कवि सार्वभौम की यह सूक्ति इसी भावकी द्योतक है—

क्वाननं क्व नयनं क्व नासिका,
क्व श्रुतिः क्व च शिखेति देशितः ।

तत्र तत्र निहितांगुलिदलो,
वल्लवी कुलमनन्दयत् प्रभुः।।

एक व्रजगोपी ने मां यशोदा की गोदी में बैठे श्री कृष्ण को नितान्त नंगा देख लिया है, देखते ही उसका वात्सल्यभाव फूट पडा और अपनी पड़ोसिन गोपियों से कहने लगी—

देखे हौं माई नंगमनंगा ।
जलसुतभूषण अङ्ग विराजत, वसन नहिं छवि उठत तरंगा ।
अंग अंग प्रतिरूपमाधुरी, निरखि लजित रति कोटि अनंगा ।।
किलकत दधि सुत मुखलेपनकरि, सूर हसत व्रज युवतिन संगा ।

सखियाँ नंगा-नंगा, नागा-नागा कहकर चिढाने लगीं तो सुन्दर श्याम खीज गये, चट से मैयाने श्रीकृष्णको समस्त वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर दिया, सम्पूर्ण शृंगार से सुसज्जित श्यामसुन्दर की शोभा तो और भी चौगनी बढ गयी, वात्सल्यमयी गोपियों की मीठी मीठी ठिठोलियों के तो आप हर समय निशाने बने रहते हैं । इन्हें कोई चैन नहीं लेने देता, नंगे खिसिया गये थे—तो अब शृङ्गार भी गोपियों को सहन नहीं हुआ । कुंभनदास जी स्वयं उस झांकी का दर्शन कर कहने लगे:—

जसोमति कै हौं आज गईरी ।
करि शृङ्गार ठाढ़े नन्दनन्दन, निरखि बदन हौं थकित भईरी ।।
लोभी लोभ परचो मन मेरो, रूप रास अंग अंग छईरी ।
कुंभनदास प्रभु गोवर्धन धर, हँसि मों सों ए बात कहीरी ।।

कृष्ण-बलराम अब नन्दभवन की चौखट लाँघकर गली गलियारों में छोटी ग्वालमण्डली के साथ खेलने निकल जाते हैं, कभी कभी खिरक में पहुँचकर छोटे बछड़ों की पूँछ पकड़कर दौड़ते भी हैं, लाला बाहर निकलने लगा है—इसलिये माँ यशोदा खूब सजा देती है, पर वे समस्त शृङ्गार को धूल-धूसरित कर डालते हैं, गोविन्द स्वामी उस छवि को देखकर कोटि कन्दर्प न्यौछावर कर रहे हैं:—

क्रीड़त मनिमय आँगन रंग ।
पीत आभ की बनी झंगुलियाँ, कुल्हे लाल सुरंग ।।
कटि किंकिनी घोष विस्मित सखी, धाय चलत बलसंग ।
गोसुत पुच्छ भ्रमावत कर गहि, पंक राग सोहे अंग ।।
गजमोतिन लर लटकत भौंहनि, सुन्दर लहर तरंग ।
गोविन्द प्रभु के अंग अंग पर, वारौं कोटि अनंग ।।

श्यामसुन्दर का शिशुत्व धीरे धीरे आगे बढ़ रहा है, कौमार को पार गये हैं, पौगण्ड की लावण्य छटा छिटक रही है, कोटि-कोटि कन्दर्पों को तिरस्कृत करने वाला अनिद्य सौन्दर्य जब पाया है, तब वह पौवण्ड हो या कैशोर—छिटक ही पड़ता है ।

शृङ्गाररस युक्त वात्सल्यमयी गोपियों ने अब मादकता भरी हँसी ठिठौली भी शुरु कर दी है, एकदिन तो उन्होंने खुले रूप में कह ही दिया, श्यामसुन्दर ?—

ब्रूमस्त्वच्चरितं तवाभिजननीं छद्मानि बालाकृते,
त्वं याहग् गिरिकन्दरेषु नयनानन्दः कुरङ्गीदृशाम् ।
इत्युक्तः परिलेहनच्छलतया न्यस्तांगुलीः स्वानने,
गोपीभिः पुरतः पुनातु जगती मुत्तानसुप्तो हरिः ॥
—श्रीवनमालिनः

अर्थात्—श्रीकृष्ण जब गोपियों को चिढ़ाने लगे तो गोपियों ने भी ललकार कर कह दिया—श्रीकृष्ण ! हम सब तुम्हारी पोलपट्टी को माँ यशोदा के आगे खोल देंगी, बाहर से तो तुम बच्चवेषी बालक बने बैठे हो । तुम इतने बड़े हो गये— पर अब भी माँ की गोदी में जा बैठते हो, परन्तु तुम्हारी अन्तरङ्ग लीला को हम जानती हैं जो गोवर्धन पर्वत की गुफाओं में मृगनयनी गोपियों के साथ आनन्द-विहार चलता है । आज हम तुम्हारा समस्त गोपी—रमण की लीला को मां को सुना देंगी, तब तुम्हारी सब सिटल्ली गायब हो जायेगी । गोपियों के ऐसा कहने पर श्याम सुन्दर उनके सामने ही नीची नजर करके अपने हाथ की अंगुली को मुख में देकर चूसने लगे और अपने दोनों चरणों को ऊपर फैला कर मणिमय खंभ पर रख दिया और पलना में नेत्र बंद कर सोगये ऐसे श्रीहरि जगतीतल कर मणिमय खंभ पर रख दिया और पलना में नेत्र बंद कर सोगये ऐसे श्रीहरि जगतीतल की रक्षा करें ।

ज्यों ज्यों श्रीकृष्णकी वय आगे बढ़ी, त्यों त्यों सारी चपलता-चंचलता की राशि उनमें बढ़ती ही चली गई, अब तो एक और गुण का उनमें विकास होगया है, वे ग्वालमंडली के साथ मक्खन चोरी भी करने लगे हैं । लीला तो लीला है, जब लीला ही रची गई है, तो सच्ची ही रचनी चाहिये । बाल्यकाल में चुराकर वस्तु खाने का एक अनौखा आनन्द प्रभुने सभी की प्रकृति में दिया हुआ है, हमारे नटवर नन्द-किशोर उस दुर्लभ स्वाद को कैसे छोड़ सकते थे, वे भक्तों की, प्रेमियों की भावना-कामना को पूर्ण करने के लिये ही ऐसा करते थे । वत्सला गोपियां चाहती थीं कि श्रीकृष्ण हमारा माखन चुराने घर आयें तभी उनकी भावनापूर्ण करने वे जाते थे । हां ! तो ग्वालों की टोली बन चुकी है, गोपियों के घर में मक्खन चुराने के विविध कार्य-क्रम प्रतिदिन बनते हैं, चोरी किसी दिन सफल किसी दिन असफल भी होजाती है :—

प्रथम चले हरि माखन चोरी ।
ग्वालिनि मन इच्छा पूरण करि,आप भजे हरि ब्रज की खोरी ॥
× × × ×
चोरी करत कान्ह घर पाये ।
निसिवासर मोहि बहुत सतावत, अब हरि हाथहिं आये ॥

माखन दधि मेरो सब ही खायौ, बहुत अचगरी कीनो।
अब तो हाथ परे हो लालन, तुमहिं भले हौं चीन्हों ॥
दोऊ भुज पकरिके कह्यो, माखन लेहौ मंगाय।
तेरी सौं मैं नेकु न चाख्यौ, सखा गये सब खाय ॥
मुख तन चितै विहँसि हँसि दीनौं, रिस तब गई बुझाय।
लिये श्याम उर लाय ग्वालिनि, सूरदास बलिजाय ॥

"सौ दिन चोर की—एक दिन शाह की"—कहावत के अनुसार एक दिन श्यामसुन्दर को गोपी ने रंगे हाथों चोरी करके माखन खाते पकड़ लिया, ग्वालबाल तो सब भाग गये, पर मुखियाजी चपेट में आगये, सखियां पकड़ कर नन्दरानी के पास लेगईं और भांति भांति के उलाहने देने लगीं। गोपियों ने साफ साफ कह दिया रानी यशोदा जी ! आप अपना गांव लीजिये, हम दूसरी जगह जाकर बस जायेंगी :—

रानी जू लीजिये यह गांव।
दीजै हम कों विदा, राम राम है जु हमारी ॥
बसिहैं अनतहि जाहि,बात लखि लई है तुम्हारी ॥
आपु तो नाहीं करति है, सुत को देत सिखाय।
तीस दिननि की बात है, का पै सही जाय ॥
मेरे शिर पर बसौ गांव काहे कौ छोड़ो।
श्याम आपनो जानि मानि लेहु मेरो निहोरो ॥
जो तुमते सुतने कही, मोहि कहौ समुझाइ।
मैं तो कछु, जानति नहिं लीजै सौंह धराइ ॥
कालि तीसरे पहर श्याम गयो भवननि माहीं।
वानें कियो अति जानु आवत मुखते कहि नांहीं ॥
बछड़ा छोड़े खिरकते बांधन को नहिं जाइ।
सखा भीर लै द्वारे बैठे, दूध दही की खाइ ॥
जै तो खायो दही दूध वरि लीजै मोंसों लेखो।
दुगुनौ चौगुनौ नौगुनौ सौगुनौ लीजै आनि विशेखो ॥
मांट भरे दही दूध फेरी, घर में चाखत नांहिं।
मोहि यही अचरज बड़ो मांगत तुम घर जाहि ॥
काहे कों घर को छुवै जो लौं कहूं मिलत परायौ।
अपनो सुन्दर माल काहू पै न जात लुटायौ ॥
आप खाइ तो हूं सहैं री, मरकट देत खवाइ,
वे भी कछु खावत नहीं देत भूमि लुढ़काइ ॥

गोपियां उलाहना देकर जब शान्त होगईं तो मां यशोदाने उन्हें बड़ी नम्रता से कहा—सखियो ! तुम नन्दगांव छोड़कर मत जाओ, यह लाला तुम्हारे ही प्रताप से हुआ है, तुम से ही मेरे गांव घर की शोभा है। फिर मैयाने नन्दलाल को डाँटना शुरू किया। क्योंरे ढीट ! तेरे घर में इतना माखन होता है, फिर भी तू चोरी करे बगैर नहीं मानता। कन्हैया बोले—मैया ! ये गोपियां बड़ी ही चालाक हैं, पहले तो हाथ पैर जोड़कर मुझे घर बुलाती हैं, फिर झूंठी चोरी लगाती हैं। मां ने कहा अच्छा ! तूने इस गोपी का कितना मक्खन चुराया है। बस, मां का कहना ही था कि झट से श्रीकृष्ण ने 'धनिष्ठा' नाम की गोपी का कुच पकड़कर कहा—मां ! बस, इतना सा ही चुराया है। इस लीला-सुलभ नन्हे मुन्ने कृष्ण की बाल लीला को देखकर मां यशोदा सहित सभी गोपियां खिलखिलाकर हँस पड़ीं। 'धनिष्ठा' वही गोपी थी जो श्रीकृष्ण को पकड़कर लाई थी, श्रीसारङ्ग कवि के शब्दों में इन्हीं भावों को देखिये :—

नीतं नव—नवनीतं कियदिति कृष्णो यशोदया पृष्ठः।
इयदिति गुरुजन सविधे विधृत धनिष्ठा पयोधरः पायात् ॥

इसके तुरन्त बादही चतुरचक्र चूरामणि श्रीकृष्णने उसकी सहचरी सहेली दूसरी सखी पर अपना दावा ठोक दिया, नन्दभवन से बाहर जाती हुई गोपियों में से उसकी एक सहेली की तरफ इशारा करके श्रीकृष्ण कहने लगे—मां ! मां !! देखो, ये गोपी मेरी दोनों गेंदों को चुराये ले जारही है, गोपियां नाराज होकर कहने लगीं—झूंठे ! कहींके ! खुद चोर हो और हमको चोरीका लोना लगाते हो, बताओ तो हमारे पास तुम्हारी गेंद कहां है। मां यशोदा भी आश्चर्य चकित हो देख रही थी—तभी नटखट कूदकर गोपी मंडल के मध्य पहुँचे और गोपी की कंचुकी में छुपे दोनों कुचों पर हाथ धरकर बोले—देखो, हमारी ये दो गेंद चुराकर तुमने चोली में छुपा रक्खी हैं, इन दोनों को यहां छोड़ जाओ, इस प्रकार कहते हुए बलपूर्वक उक्त गोपी के कुचों का मर्दन करते हुए श्रीकृष्ण के अंग भी पुलकित हो उठे।

चोरी करने की जब आदत पड़ जाती है—तब घर और बाहर की चोरी का प्रश्न नहीं रहता। श्रीकृष्णने सोचा, ये गोपियां रोज-रोज शिकायत लाती हैं, क्यों न ? अब अपने ही घर में चोरी का आनन्द लिया जाय ? वैसे भी बाहर गोपियों के घर तो अब डकैती भी डालने लगे हैं, क्योंकि घर से बाहर निकलते ही तो लंगोटिये यार साथ हो लेते हैं, फिर डर क्या है, घर में गोपी एक हो या चार हो—साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति चलाकर यूथ के यूथ ग्वालमंडली चोरी डकैती डालने निकल पड़ते हैं, पर चोरी तो एक दो या तीन तक में भी हो जाती है। श्यामसुन्दर आज तो अकेले ही घर में हैं,नन्दभवन के सिंहपौर दरबाजे पर मैया यशोदा कुछ ब्रजगोपियों के साथ बैठी नटखट श्रीकृष्ण की लीला-चर्चा में विभोर है, यशोदा जी का मुख दरवाजे से बाहर की ओर है कुछ गोपियाँ नंदभवन के भीतर की ओर देखरही हैं, उन्हें श्रीकृष्ण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। श्रीकृष्ण ने तो आज चोरी की ठानी है। चोरी के

लिये तैयार होगये, खड़े होगये---किन्तु कौंधनी में लगे छोटे छोटे नूपुर ध्वनि करने लगे, आपने किङ्किणी की रस्सी को कसकर पकड़ लिया, त्रिभङ्ग ललित तो थे ही—और भी शरीर को तिरछा कर लिया, बस किङ्किणी की ध्वनि तो बन्द होगई, परन्तु ये चरणों के पायल-नूपुर ? बड़ी तीखी मीठी टन टनाहट की ध्वनि से बज उठते हैं ? आपने सम्हल कर पैर की ऐढ़ी ऊंची उठाई और केवल पंजे की अंगुलियों के बलपर चलने लगे। पर इधर देखा तो गजब होगया, गोपियां देख-देख कर मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं। आपने तुरन्त तर्जनी उठाकर टेड़ी नजर से खबरदार किया, गोपियो ? मां से नहीं कहना, हां ! नहीं तो तुम्हें देख लूंगा, गोपियां इस छबि पर लुंठित होगईं—बेसुध होगईं और आप माता यशोदा का पीठ के पीछे से धीरे-धीरे मक्खन-मलाई के घर में जा पहुंचे, स्वाद लेकर आरोगने लगे। देखिये किसी भावुक ने कैसा चित्र खींचा है :—

सव्ये पाणौ नियमित-रव किङ्किणीदामधृत्वा,
कुब्जीभूय प्रपदगतिभि मंन्द मन्दं विहस्य।
अक्ष्णोर्भङ्ग्या विहसितमुखीर्वारयन् सम्मुखीनां,
मातुः पश्चादहरत हरिर्जातु हैयङ्गवीनम् ॥

दूध घर में घुसकर कन्हैयाने आज चोरी-चोरी मक्खन,मलाई,मिश्री का पेट भर भोग लगा लिया और जब ऊपर को दृष्टि डाली तो देखकर आश्चर्य चकित से भय-भीत होगये, एक उनके जैसा ही—हूबहू वैसा ही—बालक मणिस्तम्भ में बैठा बैठा माखन खारहा है, आप भोले से मुख कमल की नन्हीं-नन्हीं दन्तपंक्ति के प्रकाश को बिखेरते बोले—भैया मित्र ! तुम तो कोई मेरे पुराने भ्राता मित्र ही जान पड़ते हो, देखो ! मैंने तुम्हारे लिये पहले से ही आधा भाग निकालकर रख लिया है, तुम मैया से मेरी शिकायत नहीं करना, नहीं तो मां बहुत ही मारेगी। कैसा अद्भुत दृश्य है—यह बालसुलभ मुग्धता की शंकित दृष्टि और बालमुकुन्दके अनुनय—विनय के भाव तुम्हारी रक्षा करें। संस्कृत पद्य में इस रस का आस्वादन कीजिये :—

संमुष्णन्नवनीतमन्तिकमणिस्तम्भे स्वबिम्बोद्गमं—
दृष्ट्वा मुग्धतया कुमारमपरं सञ्चिन्तयन् शङ्कया।
मन्मित्रंहि भवान् मयात्र भवतो भागः समः कल्पितो–
मा मां सूचय सूचयेत्यनुनयन् बालो हरिः पातु वः ॥

सख्यरस एक विशिष्ट प्रसादगुण युक्त रस है, इसमें वियोग को अवकास थोड़ा है, मिलन असीमित है, मिलन में भी प्रतिक्षण आतुरता है, मित्र की समस्त माधुरी का आस्वादन करते समय प्रियकी प्रत्येक माधुरी तरङ्गायित प्रतीत होती है, यहाँ न्यूनता तो कभी है ही नहीं, क्षण-क्षण, पल-पल माधुरी का प्रत्येक अङ्ग वृद्धि को ही प्राप्त करता रहता है। अतः यहां कभी तृप्ति नहीं है।

श्रीकृष्ण के चतुर्विध सखा, जो अष्टप्रहर साथ ही रहते हैं, स्नान, भोजन, शयन, उत्थापन, क्रीड़ा, गौचारण एवं अन्य हास परिहासों में—सर्वत्र साथ ही हैं, वे

श्रीकृष्ण के बिना नहीं रह सकते, श्रीकृष्ण भी उनके बिना एक क्षण नहीं रह सकते। सखामण्डल का साथ छोड़कर जब कभी श्रीकृष्ण निकुञ्जलीला में प्रवेश करते हैं, तब वह सखाओं के साथ छद्म मात्र (नाटक जैसा) ही होता है, उस समय सखामंडली को श्रीकृष्ण के विप्रलम्भ का किंचिद् रसास्वादन प्राप्त हो जाता है। कुछ ही समय पश्चात् जब श्रीकृष्ण मित्रों से आकर मिलते हैं और नाना भांति से अपनी निकुंज-लीला को छुपाने का प्रयास करते हैं, तब सखागण उनकी हंसी उड़ाते हैं और मां यशोदा से शिकायत करने की धमकी भी दे डालते है। श्रीकृष्ण से उम्र में कुछ बड़े सखा जब श्रीकृष्ण से तिरछी नजर कर पूछते हैं कि—आप श्रीमान जी ! सारी दुपहरी भर कहाँ गायब थे ? तो बराबर उम्र के सखा जो उनकी लीला के भेदिये हैं, ताली बजाकर खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं, तब इनकी पोलपट्टी खुलने लगती है, तब रूस कर आप कदम्ब पर बैठ जाते हैं और कदम्ब के फूल तोड़-तोड़ कर सखाओं को मारने लगते हैं, फिर मित्रगण श्रीकृष्ण को मनाते हैं, गले लगाते हैं और परस्पर क्रीड़ा में आसक्त हो जाते हैं—यही सख्य रस का दैनन्दिन आनन्द है जो नितनूतन होकर बरसता रहता है—जिसकी बालकेलि को देखकर इन्द्र चकित हो जाता है, सखा मंडल के मध्य जिसके वनभोजन को देखकर ब्रह्मा मोहित हो जाता है और जिसकी बाल-माधुरी पर शंकर भगवान लाख-लाख प्राण न्यौछावर कर बैठते हैं—ऐसा है यह सख्य भाव का रसवर्षण।

व्रजरस माधुरी में शृङ्गार रस

व्रज की उपासना पद्धति में व्रजरस के माधुर्य की चरम-परम सीमा शृङ्गार रस समझा जाता है, यह रस परमदिव्य अलौकिक उज्ज्वल नीलमणि के सदृश देदीप्यमान है। व्रजभूमि के रसिकाचार्य—श्रीचैतन्य-महाप्रभु, श्रीरूप, सनातन, जीव गोस्वामी, प्रभृति से लेकर श्रीमहाप्रभु हित-हरिवंश और उनके अनुयायी तथा स्वामी श्रीहरिदास जी और सखी सम्प्रदाय के अन्य महानुभाव, गौड़ीय सम्प्रदाय के अन्य आचार्य विद्वान श्रीहरिराम जी व्यास आदि ने संस्कृत, हिन्दी में इतना कुछ लिखा है कि जीवन भर स्वाध्याय करने पर भी उसके छोर का पता नहीं। श्रीबल्लभाचार्य संप्रदाय के महानुभाव—अष्टछाप के कवि श्रीसूरदास, नन्ददास, कुंभनदास प्रभृति की वाणियों में व्रजरस माधुरी की मादकता भरी है, उधर श्रीभट्टजी, श्रीहरिव्यासदेव जी, स्वामी हरिदास जी आदि ने प्रत्यक्ष दर्शन कर प्रिया-प्रियतम के रूप में रसराज को उपस्थित किया है। यह शृङ्गार रस वस्तुतः रस का सागर है, बिना तैरने वाला इसमें सदा-सदा के लिये डूब जाता है, यहाँ डूब जाना ही बुद्धिमानी है, तैरने वाला मूर्ख है, क्योंकि इसे तैरने से पार नहीं किया जा सकता, यहाँ—तर्क, बुद्धि, शास्त्र, मर्यादा, लोकलाज और कोई भी जगत् व्यवहार मूर्खता का कार्य माना जाता है। यहाँ कोई बन्धन नहीं, सीमा नहीं, इयत्ता नहीं, समय नहीं। यह काल सापेक्ष भी नहीं है। यहाँ सूर्य के उदय-अस्त का पता ही नहीं चलता। राका और विभावरी के भेद का पता भी नहीं हो पाता—ऐसा विलक्षण आस्वादन है, इसदिव्य रस का—यह रसराज

है, श्रुति ने इसी को "रसो वै सः—श्रीकृष्णः" कहा है, ये ही इसके आस्वादक हैं और ये ही आस्वाद्य हैं। अपने आप में ही अपने आप का आस्वादन लेने को द्विधा रूप से प्रकट होता है, रस की दो धारा, एकमूल की दो शाखा, एक प्रवाह के दो किनारे, एक प्रकाश की दो किरण और एक स्वरूप के दो रूप होकर--युगलरूप में प्रिया-प्रियतम के रस में श्रीराधाकृष्ण लीला विग्रह में और परकीय--स्वकीय के भाव राज्य में क्रीड़ा करते हैं, इस युगल रूप की क्रीड़ा ही व्रजरस रसिकों को आनन्द सागर में डुबोये रहती है।

इस युगलरूप की लीला का स्वानुभव रसिकाचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूप में प्राप्त किया है, इन महापुरुषों को जो भी लीला जिस किसी भी रूप में मानसी-सेवा भावना में प्रकट हुई—वह उनके लिये साक्षात्कार थी, अतः उसी को उन्होंने अपना सिद्धान्त स्थापित कर दिया। पदगायन द्वारा, वाणी द्वारा, उपदेश द्वारा अथवा दीक्षा आदि के द्वारा—वह एक परम्परा पड़ गई, जो आज बिभिन्न सम्प्रदाओं के नाम से सम्बोधित है, इनमें कई सम्प्रदायों की रस प्रणाली तो इतनी स्वतंत्ररूप धारण कर चुकी है कि वे किसी भी शास्त्र मर्यादा या बन्धन को अपने स्वतंत्ररस-चिंतन में रुकावट ही समझते हैं, इनमें मुख्यतया सखी सम्प्रदाय (हरिव्यासी या हरिदासी सम्प्रदाय) और श्रीहित-हरिवंशजी का राधाबल्लभ सम्प्रदाय आते हैं। सखी सम्प्रदाय को कुछ लोग श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की शाखा भी मानते हैं—जो निर्मूल है, क्योंकि निम्बार्क सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यों ने कहीं भी रस का विवेचन नहीं किया। नहीं उनके यहाँ व्रजरस की कभी चर्चा ही हुई है, क्योंकि निम्बार्क सम्प्रदाय का व्रज प्रदेश में प्रवेश ही सखी सम्प्रदाय (स्वामी हरिदासजी की परम्परा) के माध्यम से हुआ है, इसके पूर्व निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार गुजरात, राजस्थान, कच्छ आदि में कुछ-कुछ हो चुका था। क्योंकि सम्प्रदाय प्रवर्त्तक आचार्य दक्षिण में प्रकट हुए हैं, अतः व्रज के भावों का उन पर कोई प्रभाव नहीं था, यही कारण है कि उनके ग्रन्थों में कहीं भी व्रजरस की चर्चा का उल्लेख नहीं मिलता।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की रस उपासना—

श्रीनिम्बार्काचार्य सम्प्रदाय में रुक्मिणी कृष्ण की उपासना और वंश गोपाल मन्त्र की दीक्षा अब तक भी प्रचलित है, इस सम्प्रदाय के अनेक विद्वान अब भी अपने को तात्विक पंडित और नैष्ठिक ब्रह्मचारी मानते हैं--वे लोग व्रजरस के प्रिया-प्रियतम के नित्यविहार की बातों से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। शोधकर्त्ताओं ने भी यही स्थापित किया है कि मूल निम्बार्क संप्रदाय में राधाकृष्ण की रस उपासना की प्रणाली नहीं थी--यह तो श्रीचैतन्य महाप्रभु, स्वामी हरिदास जी, श्रीहित हरिवंश जी आदि के प्रभाव से अठारहवीं शताब्दी में रस उपासना की ओर अग्रसर हुए हैं। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध दशश्लोकी के एक श्लोक--**'अङ्के तु वामे वृषभानुजां मुदा'** श्लोक पर विद्वानों में भारी मतभेद है। प्रथम तो कई विद्वान दशश्लोकी को श्रीनिम्बार्काचार्य प्रणीत मानते ही नहीं, कई लोग उक्त श्लोक को प्रक्षिप्त भी मानते हैं,

कई विद्वानों ने दशश्लोकी की भाषा को तुलनात्मक दृष्टि में उन्नीसवीं **सदी की** भाषा माना है। दूसरे सबसे बड़ी बात यह है कि निम्बार्क सम्प्रदाय के ही एक **मुख्य** आचार्य श्रीपुरुषोत्तमदेव भट्ट जी उक्त श्लोक की व्याख्या में 'राधाकृष्ण' के स्थान पर **'रुक्मिणी** कृष्ण' की उपासना स्वीकार करते हैं। यद्यपि इनका काल भी विवादास्पद है।

श्रीपुरुषोत्तमदेवजी, श्रीनिम्बार्काचार्य के पश्चात् सातवीं पीढ़ी में हुए हैं, निम्बार्क सम्प्रदाय की ऐसी मान्यता है, वे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वेदान्त रत्न मञ्जूषा' की टीका में—**'अङ्के तु वामे वृषभानुजां मुदा'**—श्लोक की व्याख्या में स्पष्ट लिखते हैं :—

".....भगवतः श्रीकृष्णस्य वामाङ्केऽनुरुप सौभगां लक्ष्मी रुक्मिण्याख्यां सदा स्मरेम"

अर्थात् श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में अनुरूप सौभाग्य स्वरुपा श्रीलक्ष्मीजी तथा श्रीरुक्मिणी जी का हम स्मरण करते हैं। इसके पश्चात् वे लिखते हैं—**'वृषभानुजां च स्मरेम'** अर्थात् बृषभानुनन्दिनी श्रीराधा का भी स्मरण करते हैं।

उक्त व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के एक मुख्य आद्याचार्य वेद, वेदान्त, उपनिषद, भाष्यकार और प्रचारक श्रीपुरुषोत्तमदेवजी भट्ट के समय तक सम्प्रदाय में लक्ष्मी और रुक्मिणी की ही प्रधानता थी। आचार्य प्रवर ने **'वृषभानुजांच** इस वाक्य में 'च' का प्रयोग कर श्रीराधाजी को बहुत दूर कर दिया है।

इतना ही नहीं, श्रीपुरुषोत्तमदेव जी को **'वृषभानुजा'** शब्द के प्रयोग पर भी आपत्ति प्रतीत होती है, वे यहीं पर आगे लिखते हैं—

"अनयोर्मध्ये ऐश्वर्याधिष्ठातृत्वेन लक्ष्म्या प्राधान्यात् तस्या एव पूर्व प्रयोग उचितः"

इतना ही नहीं आचार्यपाद श्रीपुरुषोत्तमभट्ट जी ने श्रीनिम्बार्क संप्रदायानुयायी समस्त वैष्णवों को श्री रुक्मिणी तथा श्रीसत्यभामा के सहित श्रीद्वारिकाधीश चतुर्भुज वासुदेव भगवान की उपासना करने का ही उपदेश दिया है देखिये उसी टीका में:—

"तथा च रुक्मिणी सत्यभामा व्रजस्त्रीविशिष्टः श्रीभगवतः-
पुरुषोत्तमो वासुदेवो सम्प्रदायिभिः वैष्णवैः समोपासनीयः ।।"

अर्थात् रुक्मिणी सत्यभामा एवं व्रजस्त्रियों से विशिष्ट भगवान पुरुषोत्तम वासुदेव ही सांप्रदायिक (निम्बार्की) वैष्णवों के उपास्यदेव हैं। इस प्रकार श्रीनिम्बार्क संप्रदाय के पूर्ववर्त्ती आचार्यों में भी श्रीराधा तत्व की उपासना पर मतैक्य नहीं है। इसके अतिरिक्त व्रज-वृन्दावन में भी निम्बार्क संप्रदाय के इतिहास की प्राचीनता संदिग्ध ही बनी रही है, स्वयं वृन्दावन में कोई भी ऐसा कृष्ण लीलास्थल या मठ मन्दिर उक्त संप्रदाय के अधिकार में नहीं है—जिससे उनके वृन्दावन आगमन की प्राचीनता को सिद्ध करता हो, स्वयं श्रीनिम्बार्क संप्रदाय के मूल आचार्य का मुख्य गद्दी स्थान—श्री श्रीजी महाराज की बड़ी कुञ्ज की गद्दी लगभग १५० वर्ष से ही वृन्दावन में प्रारम्भ हुई है—जो गौड़ीय संप्रदाय के प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध मन्दिर

श्रीगोविन्ददेव जी की भूमि पर ही स्थित मानी जाती है। ब्रजमण्डल में चौरासी कोश की परिधि में भी निम्बार्क संप्रदाय के किसी प्राचीन स्थान का उल्लेख किसी इतिहास कार ने नहीं किया है। इसके विपरीत ब्रज के अत्यधिक प्रसिद्ध तीर्थ एवं लीलास्थल श्रीनन्दगांव-बरसाना के प्राचीनतम देवमूर्तियों के मस्तिष्क पर आज तक भी गौड़ीय संप्रदाय के आचार्य श्रीनारायण भट्टजी गोस्वामी के तिलक छाप ही धारण कराये जाते हैं, उक्त देवस्थानों के एकमात्र अधिकारी गोस्वामी वंशज महानुभाव भी अपने को श्रीमाध्व गौड़ेश्वर संप्रदायाचार्य श्रीनारायण भट्टजी गोस्वामी महाराज का ही दीक्षित स्वीकार करते हैं।

गिरिराज—गोवर्धन की १४ मील की पूरी परिक्रमा के मुख्य-मुख्य तीर्थ स्थान—श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्ड, श्रीकुसुम सरोवर, श्रीमानसीगंगा, श्रीगोविन्दकुण्ड, श्रीपूंछरी आदि पर गौड़ीय संप्रदाय के ही प्राचीन स्थान बने हुए हैं, उक्त स्थानों पर आबादी भी पुराने समय से (श्रीचैतन्य महाप्रभु से लेकर अब तक) गौड़ीय वैष्णवों की ही रही है,निम्बार्क संप्रदाय का एक भी प्रचीन स्थान गोवर्धन परिक्रमा में नहीं है। राधकुण्ड से दो मील पर स्थिर जिस नीम गांव को श्रीनिम्बार्काचार्य की भजनस्थली बताया जाता है, वह गांव भी ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन लीलास्थल नहीं है,गांव की बसति, भूमि,मिट्टी और भौगौलिकता से पता चलता है कि उक्त ग्राम अधिक से अधिक तीन चार सौ वर्ष से अधिक का नहीं है। 'नीमगांव' नाम तो ब्रज में पचासों मौजूद हैं, ब्रज में प्रत्येक उस गांव को 'नीम गांव' कहते हैं—जहां नीम के वृक्षों की बहुतायत होती है।

यह अवश्य माना जाता है कि गुजरात और राजस्थान में कृष्णप्रणामी सम्प्रदाय के सान्निध्य में आने के कारण निम्बार्क सम्प्रदाय के अनेक महानुभाव ब्रजरस की ओर आकर्षित हुए थे। स्वयं श्रीनिम्बार्काचार्य का आगमन भी मथुरा में ही हुआ है, वृन्दावन में उनके आने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। मथुरा में ध्रुवटीला या विश्राम घाट पर राधाकान्त मन्दिर आदि श्रीनिम्बार्काचार्य के समय की स्थापना प्रतीत होती है, निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों का आगमन भी मथुरा तक ही सीमित रहा है, जिनमें श्रीनिम्बार्काचार्य के प्रथम अग्रणी एवं मुख्य शिष्य तथा श्रीनिम्बार्कागद्दी के एक मात्र उत्तराधिकारी श्रीस्वभूरामदेवाचार्य आदि प्रमुख हैं। उस समय प्रसिद्ध दिग्विजयी काश्मीरी पंडित श्रीकेशवभट्ट जी अपनी दिग्विजय यात्रा के समय मथुरा पधारे थे,और स्वयं श्रीनिम्बार्काचार्य अथवा उनके किन्ही अनुयायी महानुभाव से उक्त दिग्विजयी पंडितजी की भेंट भी हुई है,किन्तु उस भेंट से काश्मीरी पण्डित उतने प्रभावित नहीं हो पाये—जितने वे नवद्वीप (बंगाल) जाकर श्रीचैतन्य महाप्रभु से प्रभावित हुए थे। स्पष्ट है कि श्रीनिम्बार्क सिद्धान्त तब तक ब्रजभूमि के परम-चरम तत्व रस रूप को ग्रहण नहीं कर पाया था, जिसको नवद्वीप में श्रीचैतन्यदेवने केशव काश्मीरी भट्ट को अवगत कराया था। ब्रजरसमाधुरी के अभूतपूर्व रसास्वादन के लोभ को श्रीकेशवकाश्मीरी जी छोड़ न सके और उन्होंने दिग्विजय के दुरभिमान को त्यागकर श्रीमहाप्रभु की शरण ग्रहण कर ली।

प्रकरण वश यहाँ यह बता देना भी आवश्यक होगा कि इस बीसवींशती के मध्य काल में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के कुछ प्रचारकों ने अपने कमजोर पक्ष को सबल बनाने में ऐसा अंधाधुन्ध प्रचार किया, जिससे बुद्धि जीवी लोगों की आंखें भी चौंधिया गई हैं। उदाहरण स्वरूप उन्होंने श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय को अनादि सम्प्रदाय के नाम पर पाँच हजार वर्ष पुराना तक कहना शुरू कर दिया, उनके उत्तरोत्तर एक-एक आचार्य की आयु को बढ़ा-चढ़ाकर तीनसौ, पाँचसौ, आठसौ और हजार वर्ष तक कहना प्रारम्भ कर दिया है। श्रीआद्य शंकराचार्य और बौद्धों से भी पहले अपने इतिहास को स्थापित करने के कुप्रयास में—बाद में इन प्रचारकों को मुँह की खानी पड़ी है, अब भारत के प्रबुद्ध इतिहास वेत्ताओं ने अपनी कलम उठाना प्रारम्भ करदी है। आज तो वह समय बीत गया, अब तो साधारण जागरूक नागरिक जो थोड़ा भी सम्प्रदाय के इतिहासों को जानता है, वह अनर्गल प्रलापों में विश्वास नहीं रखता, किन्तु एक हवा ऐसी अवश्य चली, जिसमें कई अच्छे विद्वान् भी—श्रीबलदेव प्रसाद उपाध्याय जैसे सुविज्ञ जन भी वह चले थे, उस समय कई शोध ग्रन्थ भी ऐसे लिखे गये हैं, जिनमें व्रजरस माधुरी का सर्व प्रथम प्राकट्य श्रीनिम्बाकाचार्य द्वारा माना गया है, किन्तु यह वास्तविकता नहीं है। वास्तविकता और सत्यता यह है कि आध्यात्मिक वेदान्त-सिद्धान्त और भक्ति-सिद्धान्तों का उद्गम स्थान या प्रचार-प्रसार केन्द्र दक्षिण भारत में हुआ, उसकी लहर धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर बढ़ती चली आई। इसके संस्थापक, प्रचारक, प्रसारक, श्रीशंकर, श्रीरामानुज, श्रीमाध्व और श्रीनिम्बार्क माने जाते हैं, श्रीनिम्बार्काचार्य के जन्मस्थान का तो आज तक सही पता कहीं लगा ही नहीं है, यह भी निश्चित प्रमाण नहीं मिला कि ये महानुभाव दाक्षिणात्य थे या मध्यभारत में कहीं प्रकट हुए थे, शोधकर्त्ताओं से यह विषय अभी अछूता ही पड़ा है।

इसी तरह इतिहास और साहित्य सृजन की परम्परा से यह प्रमाणित होता है कि भक्तिरस की एक सशक्तधारा का उद्गम और प्रचार-प्रसार बहुत पहले पूर्वी भारत में होचुका था। उसका भी आधार संस्कृतवाङ्मय ही था, असमिया, मैथिल, और बंगला संस्कृत के प्राचीन साहित्य इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं, श्रीजयदेव कवि का गीत गोविन्द और विद्यापति तथा चंडीदास की कृतियों से सिद्ध है कि व्रजरस-माधुरी से संयुक्त श्रीराधाकृष्ण लीला का दिव्य गुणगान वैष्णवाचार्यों से बहुत पहले प्रारम्भ होचुका था, तब तक श्रीनिम्बार्काचार्य का प्राकट्य भी नहीं हुआ था और नहीं पूर्वी भारत में कहीं निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार ही था। पूर्वी भारत में सर्वप्रथम श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का प्रवेश वर्द्धमान की प्रसिद्ध गद्दी से होता है, जो श्रीनिम्बार्काचार्य परम्परा में श्रीस्वभूरामदेवाचार्य जी की मुख्य गद्दी मानी जाती है, वर्द्धमान में इसकी स्थापना कई शताब्दि पूर्व हुई है।

व्रजरसमाधुरी की पूर्व से प्रवाहित रस-धारा को ही श्रीचैतन्य महाप्रभुने उज्ज्वल रूप प्रदान किया, यही रसधारा श्रीमहाप्रभु के द्वारा पश्चिम-उत्तर भारत में लाई गई थी। यह इतिहास प्रसिद्ध बात है कि चैतन्य महाप्रभु के व्रज आगमन के

समय तक ब्रज के समस्त लीलास्थल प्रायः लुप्त थे, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि श्रीचैतन्यदेव के पूर्व किन्हीं वैष्णवाचार्य ने ब्रज के लुप्त तीर्थों का उद्धार किया हो, ब्रज के तीर्थों का या प्राचीनतम मूर्त्तियों का पुनः प्राकट्य श्रीमहाप्रभु के द्वारा होना ही इतिहास सम्मत है, आज भी ब्रज–वृन्दावन में प्राचीनतम देवमन्दिर—श्रीगोविन्दजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीराधारमण जी, श्रीगोकुलानन्दजी, श्रीराधादामोदर जी, शृङ्गार वट, श्रीराधाश्यामसुन्दर श्रीमदनमोहन जी आदि गौड़ीय सम्प्रदाय या श्रीमन्महाप्रभु के अनुगत आचार्य श्रीरूप, सनातन, जीव, गोपालभट्ट, दास गोस्वामी और श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के पीठ माने जाते हैं। इसी प्रकार नन्दगाँव, बरसाना, गोवर्धन, राधा-कुण्ड के प्राचीनतम देव मन्दिर भी इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं। गौड़ीय सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध आचार्य श्रीनारायणभट्ट गोस्वामी ने ही बरसाने में स्थित वर्त्तमान श्रीराधाजी के श्रीविग्रह को प्रकट किया था और ब्रजचौरासी के एक-एक गाँव के लीला स्थलों की स्थापना की थी। साथ ही उन्होंने भादों मास में चलने वाली ब्रज-चौरासी की परिक्रमा (ब्रज-यात्रा) तथा वर्त्तमान रासलीला को भी प्रारम्भ किया था।

एक बात और—निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी महानुभाव विगत ५० वर्ष पहले तक अपने को सनकादि ऋषियों की भाँति नैष्ठिक ब्रह्मचारी वैदिक परम्परा के अनुयायी मानते आये हैं और उसी भाँति त्याग-तपस्या का जीवन भी व्यतीत करते रहे, इस सम्प्रदाय के अनेक सन्त अपने नाम के आगे ब्रह्मचारी शब्द लगाने में गौरव का अनुभव करते थे, क्योंकि इस सम्प्रदाय में रस-उपासना की प्रधानता नहीं थी, गवालियर वाला मन्दिर वृन्दावन के संस्थापक प्रसिद्ध सन्त ब्रह्मचारी ही कहे जाते थे, निम्बार्क महासभा के संचालक नन्दकुमार शरण ब्रह्मचारी थे, किन्तु बीसवीं सदी में ज्यों-ज्यों सम्प्रदाय में रसधारा का चिन्तन अधिक बढ़ा –ब्रह्मचारी पद समाप्त होकर 'देव' और 'शरण' प्रभृति नामों की बहुतायत बढ़ती गई है। वस्तुतः यह सम्प्रदाय परम विरक्त एवं संसारी धर्मों से परे रहा है। इस सम्प्रदाय में बड़े-बड़े नागा,यती भी हुए हैं, एक ऐसे सन्त का उल्लेख नागा जी के नाम से भक्त-माल में मिलता है, जो 'नागा'कहाते थे,अर्थात् वस्त्रहीन शरीर पर विभूति लपेट वे ब्रज की परिक्रमा करते थे, बरसाना के पास 'नागाजी की कदम्ब खंड़ी' आज भी प्रसिद्ध है, किन्तु इनको श्रीराधा-रानी ने अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और ये बरसाने वाली के ब्रजरस में विभोर रहते थे, ये संभव है श्रीनारायणभट्ट जी के ही समसामयिक हैं, इनका बड़ा ही सुन्दर दिव्य चरित्र है, निम्बार्क सम्प्रदाय के आप आचार्य माने जाते हैं, इनके अतिरिक्त उक्त सम्प्रदाय में (ब्रह्मचारी—नागा या यती) कोई भी ऐसे महानुभाव दृष्टि गोचर नहीं होते जो रसिक परम्परा में इतिहास प्रसिद्ध हों।

सोलहवीं शताब्दि में सखी सम्प्रदाय के द्वारा जो रसिक परम्परा वृन्दावन में प्रारम्भ हुई है, उसके मुख्य आचार्य रसिक शिरोमणि महानुभावों में श्री श्रीभट्टदेव जी

महाराज श्री श्रीहरिव्यासदेव जी महाराज, विश्ववन्द्य रसिकाचार्य श्रीस्वामी हरिदास जी महाराज प्रभृति और उसी परम्परा में अनेकानेक प्रसिद्ध रसिक सन्त हुए हैं, जिनका प्रसिद्ध एवं बहुचर्चित जनश्रुत स्थान यमुना किनारे-टटिया स्थान के नाम से प्रसिद्ध है यद्यपि उक्त महानुभावों ने कभी भी कहीं भी अपनीकिसी वाणी में अपने को श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं किया है, फिर भी प्रत्येक उपासक को पुराण प्रसिद्ध चतुः सम्प्रदायों में से किसी एक से संवद्ध होना ही पड़ता है, तभी उसका लौकिक व्यवहार चल पाता है, संभव है, इसी उद्देश्य से सखी सम्प्रदाय या श्रीहरि-व्यासो सम्प्रदाय के रसिक आचार्यों ने अपने स्वरूप को उन्नीसवीं शताब्दि के प्रारम्भ में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्भुक्त या अन्तर्गत स्वीकार कर लिया था अन्यथा इन रसिक महानुभावों की कोई भी शैली श्रीनिम्बार्क संप्रदाय से मेल नहीं मिला पाती, आज भी रसिकों का अपना अलग ही एक अस्तित्व बना है।

सखी सम्प्रदाय की रस उपासना—

वृन्दावन की रस परम्परा में सखी सम्प्रदाय अपना एक पृथक अस्तित्व रखती है और इसके आचार्य श्री श्रीभट्ट जी, श्रीहरिव्यासदेव जी, श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज अनेक रस सिद्ध महापुरुष व्रज वृन्दावन की भूमि में अवतरित हुए हैं—इन महानुभावों ने कहीं भी अपनी दिव्य वाणियों में किसी भी सम्प्रदाय से अपने को बांधा नहीं है, ये जीवन्मुक्त रसास्वादी महापुरुष भला किसके वन्धन में रहने वाले थे, वे वेद, शास्त्र, पुराण और किसी भी लोक-मर्यादा से दूर रह कर प्रिया-प्रियतम की रसमयी भावना में डूबे रहना चाहते हैं, इनके किसी भी आचरण से, वाणी से, उपदेश से, व्यवहार से श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का कोई संबंध स्थापित नहीं होता। इनकी शिक्षा, दीक्षा, कंठी–तिलक, रहनि-सहनी, आहार-व्यवहार सभी तो निराला ही है। इस संप्रदाय के रसिक सन्त टटिया स्थान जैसे अनेकों दिव्य लता कुंजों से वेष्टित यमुना की बालुका के रमणीय स्थलों में ध्याननिमग्न होकर युगल सरकार के नित्य-बिहार का रसास्वादन करते रहते हैं, शरीर पर श्रीयमुना की दिव्य रज लपेटे कंथा (चिथड़ों की गूदड़ी) कंधे पर डाले, बाँयें हाथ में मिट्टी का करुआ, वन की लकड़ी और दाँयें में माला लिये वन-वन में भ्रमण करते हैं, भूख लगने पर व्रजवासियों के घर की मधुकरी मांगकर खालेते हैं, कभी लता कुंजों में ध्यानस्थ हो जाते हैं—यही इनका जीवन है।

ऐसी अद्भुत साधना है—इन सखी सम्प्रदाय के रसिकसन्तों की। इसीलिये इनके एक आचार्य ने कहा है :—

नांही द्वैताद्वैत ही, नहीं विशिष्टाद्वैत।
बँधे नहीं मत बादमैं, ईश्वर इच्छा द्वैत॥
आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप।
नित्य किशोर उपासना, जुगल मंत्र को जाप॥

इन उक्तियों से सिद्ध है कि ये रसिक महानुभाव, जिन्होंने वृन्दावन की रस परम्परा को पुनरुज्जीवित किया है या दिव्यरस का दान दिया है—किसी सम्प्रदाय विशेष में बंधे रहना उपयुक्त नहीं समझते। छोड़िये इस रूखे विषय को, और अब इन महापुरुषों की वाणियों में गाये गये दिव्य ब्रजरस का आनन्द लीजिये। श्री श्रीभट्ट जी श्री हरिव्यासदेवजी आदि महानुभावों ने ब्रजरस माधुरी का स्वयं पान किया है और उसी माधुरी को वाणी में व्यक्त किया है, वे युगल सरकार की एकरूपता का वर्णन कितने माधुर्य के साथ करते हैं :—

दर्पन में प्रतिविम्व ज्यौं, नैंनजु नैंननि मांहि।
यों प्यारी पिय पलक हूँ, न्यारे नहिं दरसाहिं॥
प्यारी तन स्याम, श्यामा तन प्यारौ।
प्रतिबिम्बित तन अरसि परसि दोउ,--
एक पलक दिखियत नहिं न्यारौ॥
ज्यौं दर्पन में नैंन, नैंन में नैंन सहित दर्पन दिखरावौ।
श्रीभट जोट की अति छवि ऊपर,तन-मन-धन न्यौछावर डारौ॥

वाणीकार श्रीहरिरामव्यासदेवजी ने एक पद में कैसा अद्भुत भाव व्यक्त किया है, श्रीप्रिया के सौन्दर्य-माधुर्य का आस्वादन कर श्रीलाल जी न्यौंछावर होरहे हैं :—

नव यौवन छबि फवति किशोरीहिं, देखत नैंन सिरात।
बलि - बलि सुखद मुखारविन्द की, चन्दवृन्द दुरिजात॥
गौर ललाट पटल पर शोभित, कंचुक कच उरझात।
मानहुँ कनक कंज मकरन्दहि, पोवत अलि न अघात॥
दुख मोचन रोचन रतनारे, फूले जनु जल जात।
चंचल पलक निकट सुवनन के, पिशुन कहत जनु बात॥
नक बेसरि बंशी के संभ्रम, भौंह मीन अकुलात।
मनि ताटंक कमठ घूंघट उर, जाल विधे पछितात॥
श्याम कंचुकी मांझ सजे, फूले कुच कलशन मात।
मानहुँ मद गयन्द कुम्भन पर, नील बसन फहरात॥
नख शिख सहज सुन्दरीहिं विलसत, सुकृति साँवल गात।
यह सुख देखत व्यास और सुख, उड़े पुराने पात॥

श्रीप्रिया-प्रियतम के परम दिव्य प्रेम रस के उद्गाताओं में रसिक वर्य स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज का स्थान अग्रणी है, वे प्रिया-प्रियतम के नित्य-विहार स्वरूप निकुञ्जलीला को छोड़कर अन्यत्र कुछ भी कल्पना नहीं करते। ये रसिक महानुभाव अवतारलीला, ब्रजलीला तथा रसमयी बिहार लीलाओं को स्वीकार तो करते हैं, किन्तु निकुञ्जलीला को ही सर्वोपरि वन्दनीय, स्मरणीय, चिन्तनीय एवं परम आराधनीय

मानते हैं। यहाँ प्रिया-प्रियतम नित्यनिकुञ्ज में देशकाल से परे असीमित सहज प्रेम में बंधे है, **"याही रस में बंधे नहीं जानत निशिभोर"** यहाँ न सूर्योदय का पता है, नहीं निशा के आगमन की कोई सूचना होती है, यहाँ वही उपास्य है, वही उपासक है, समस्त क्रियायें अनन्त काल तक समरूप से चलती हैं ऐसा अगाध अबाध यह नित्य-विहार है, यहाँ श्रीराधा रस ही सर्वतः चतुर्दिग् से प्रवाहित होरहा है, एक पदावली में देखिये :—

को सरि करै हमारी राधा।
यद्यपि नाम महातम सेवत, और वैस या रस में बाधा॥
अंग-संग नवलकिशोर किशोरी, एक वैस रस सिंधु अगाधा।
जागत अनुरागत निसिवासर, लगत न नैंन निमेष न आधा॥
नित्य विहार अधार हमारें, एक प्रेम निज नाम अराधा।
श्रीविहारीदास, हरिदास, विपुल बल,सब अभिलाष मिली सुख साधा॥

संसार में और की और कोई नई बात नहीं होती, पर श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि यहाँ तो अभी कुछ और है अभी और है और अभी और है—अर्थात् प्रतिपल प्रतिक्षण निमिष-निमिष परिवर्द्धमान है यह :—

यह कौन बात जू अबहिं और,
अबहिं और अबहि औरै।
देवनारि नागनारि और नारि,
ते न हौंहि और की औरै॥
पाछे ना सुनौ, अब हू ना ह्वै है,
यह गति अद्भुत रूप की ओर की औरै।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी,
या रस ही बसभये यह भई और की औरै॥

इस दिव्य अद्भुत अलौकिक विलक्षण रूप-रस-माधुरी का अवलोकन कर प्यारे श्यामसुन्दर भी ठिठक जाते हैं, एक क्षण का भी विलगाव नहीं है, फिर भी प्रियतम श्रीकृष्ण को ऐसी अनुभूति होने लगती है कि—यह श्रीमुख, यह श्रीराधामुख कमल, सम्भवतः इससे पूर्व मैंने देखा ही नहीं है, श्रीमुख का दर्शन प्रियतम के हृदय में एक नई लालसा, अतृप्तिपूर्ण प्यास की छट-पटाहट को जाग्रत कर देता है, देखिये, प्रिया का मुखचन्द्र दर्शन करते ही प्रियतम क्या कहते हैं :—

प्यारी जू जब-जब देखौं तेरौं मुख,
तब - तब नयौ-नयौ लागत।
ऐसौ भ्रम होत मैं कबहूँ देखौ न री,
दुति कौं दुति लेखनिन कागत॥

कोटि चन्द्र तैं कहाँ दुराये री, नये नये रागत।
श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत काम की सांति न होई—
न होइ तिरि पति, रहौं निसिदिन जागत ।।

× × × ×

वनी री तेरे चारि - चारि चूरी करनि।
कंठसिरी दुलरी हीरनि की, नासा मुक्ता ढरनि।।
तैसौई नैंननि कजरा फविरह्यौ, निरखि काम डरनि।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी,रीझि पिय पग परनि ।।

श्रीराधा रूप-माधुरी के अगाध सागर में कितनी विचित्र छवि-तरङ्ग उठ रही हैं, देखिये स्वामी जी का पद :—

जोवन रँग रँगीली सोने से गात,
ढरारे नैंना, कंठ पोत मखतूली।
अंग-अंग अनंग झलकत-कानन वीरैं सोभा देत,
देखत ही वनै जोन्ह में जोन्ह सी फूली ।।
तन सुख सारी, लाही अँगिया, अतलस, अतरौटा,
छवि चारि-चारि चूरी, पहुँचनि पहुँची खमकिवनी ।।
नक फूल जेव,मुख बीरा चौका कौंधे संभ्रम भूली,
ऐसी नित्य विहार की श्रीबिहारीलाल सँग अति अधीन ।।
आतुर लटपटात ज्यौं तरुतमाल कुंजमहल।
श्रीहरिदासी जोरी सुरति हिंडोरे झूली ।।

एक और पद में श्रीकृष्ण की ललित त्रिभंगी छवि को प्रस्तुत किया गया है :—

आजु तृन टूटतहै री, ललित त्रिभंगी पर।
चरन-चरन पर मुरलि अधर पर, चितवनि वंक छवीली भुव पर ।।
चलहु न वेगि राधिका पिय पहँ, जो भई चाहत हौ सर्वोपर।
श्रीहरिदास समय जव नीकौ, हिलिमिलि केलि अटल रति धूपर ।।

व्रजरस-माधुरी की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति प्रिया-प्रियतम श्रीश्यामाश्याम कुँवर-किशोरी के रासनृत्य में व्यञ्जित होती है, रास नृत्य के इस पद में कैसा अद्भुत चित्रण है :—

अद्भुत गति उपजति, अतिनाचत, दोऊ मंडल कुँवर किशोरी।
सकल सुगन्ध अङ्ग भरि ओरी, पिय नृत्यति,मुसुकाति मुखमोरी ।।
तालधरैं वनिता मृदङ्ग, चन्द्रा - गति घात बजैं थोरी - थोरी।
मधुर भाव भाषा विचित्र अति, ललित गीत गावैं चितचोरी ।।
श्रीवृन्दावन फूलनि फूल्यौ, पूरब ससि, समीर गति थोरी।
गति विलास, रस - हास परस्पर, भूतल अद्भुत जोरी ।।

श्रीजमुना जल विथकित पुहुपनि, छवि रति पति डारत तृन तोरी।
श्रीहरिदास के स्वामीस्यामा,कुंजबिहारी जू कौ रस रसना कहै को री ।।

महाबाणीकार श्रीहरिव्यासदेव जी तथा अन्य रसिक आचार्यों द्वारा गाया गया व्रजरस अगाध सागर के रूप में है, इसी सम्प्रदाय के आचार्य महानुभावों की रस-सूक्तियाँ भी आस्वादन करने योग्य हैं :—

वदन विलोकनि में न अघात।
पल न लगे पल रहे थकित ह्वै, डग भरि चल्यौ न जात ।।
दोउ दोउन के प्राण जीवन धन, छिन विछुरे न सुहात।
एक रंग रंगि रहे रंगीले, एक प्राण द्वै गात ।।
महासुकुमार किशोर किशोरी, जोरी अति अवदात।
निरखत 'श्रीहरिप्रिया' सहचरी, उर आनन्द न समात ।।

एक रंग में रंगे दोऊ, एक प्राण है गात।
वदन विलोकत परस्पर, छिन विछुरे न सुहात ।।
नैननि नैंन मिलावहीं, कहि कहि बेन रसाल।
रसिकन को धन सहज दोऊ,लाड़ लड़ीले लाल ।।

शृङ्गार रस की परम चरम सीमा कहाँ तक पहुँचती है, इन रसिकाचार्यों से पूछिये ! रसिकों की दृष्टि में श्रीराधा केवल उनके लिये ही परमाराध्या नहीं है, अपितु उनके परम इष्टदेव अनुराग-राग-सागर, रसिक-चक्रचूड़ामणि श्रीकृष्ण भी श्रीप्रिया के चरण कमल-मकरन्द रसपान के लिये लालायित रहते हैं :—

वन्दित प्रियापाद जलजात।
काम रस वश श्यामसुन्दर, धरि हृदय जल जात ।।
करत अति आधीनता, परसत दृगन जल जात।
'रसिक भगवत' चूमितल, मंजुल सुमुख जल जात ।।

वन्दौं राधिका पद पद्म।
परम कोमल सुभग सीतल, कृपा युत सुख कद्म ।।
चरण चिन्तित अमल उरसिज, जगत सवही छद्म।
भाल पर अक्षर अनैसे, होत परसत रद्म ।।
कृष्ण अलंकृत सुहस्त पूजित, निगम नूपुर नद्म।
रसिक जन जीवन समूली, अग्रसर वस सद्म ।।

यह व्रजरस माधुरी ही है—जहाँ अमर्यादित प्रेम रस की धारा प्रवाहित रहती है, यदि प्रियतम श्रीकृष्ण प्रिया श्रीराधा के चरण चांप रहे हैं तो यह प्रेम-परिपाटी में कोई अनहोनी नहीं है, यह प्रेमाधीनता प्रेमी का भूषण है, किस खूबी के साथ

श्रीव्यास जी ने इस प्रेम वैचित्री का वर्णन किया है, ये सिद्ध रसिक प्रभु लीला का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं :—

चाँपत चरण मोहनलाल।
प्रयंक पौढ़ी कुमरि राधा, नागरी नववाल॥
ललित कर धरि परसि नैननि, हरषि लावत भाल।
लाय राखति हृदय सौं तब, गनत भाग विशाल॥
देखि पिय आधीनता, भई कृपा सिंधु दयाल।
'व्यास' स्वामिनि लिये भुजभरि, अति प्रवीण कृपाल॥

और इसी रसको रसिकाचार्य श्रीश्रीभट्टजी ने अपनी वाणी में इस प्रकार प्रकट किया है :—

प्यारी जू के चरण पलोटत मोहन।
नील कमल के दलन लपेटे, अरुण कमलदल सोहन॥
कबहुंक लै लै नैंन लगावत, अलि धावत ज्यों गोहन।
जै श्रीभट्ट छबीली श्रीराधे, होत जगे ते छोहन॥

व्रजरस रसिकों की एक मात्र आधार भूता, परमाराध्या, रससार सर्वस्वा, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा ही इस शृङ्गार माधुरी का प्राण हैं। उनको नाम, रूप, लीला, क्रीड़ा—सभी रसमय हैं, माधुर्यपूर्ण हैं, श्यामरस से ओतप्रोत हैं, नीचे के पदों में श्रीराधाभाव का आस्वादन कीजिये :—

परम धन राधा नाम अधार।
जाहि श्याम मुरली में गावत, सुमिरत बारम्बार॥
जन्त्र मन्त्र अरु वेद तन्त्र में सभी तार को तार॥
श्री शुक प्रगट कियो नहि याते, जानि सार को सार॥
सहचरि रूप धरचौ नन्द नन्दन, तोउन पायो पार।
'व्यासदास' अब प्रगट वखानत, डारि भार में भार॥

× × × ×

जय श्री राधिका रसभरी।
रसिक सुन्दर साँवरे की, प्राण जीवनि जरी॥
गौर अङ्ग अनङ्ग अद्भुत, सुरति रङ्ग निखरी।
सहज अङ्ग अभङ्ग जोरी, सुभग साँचे ढरी॥
परम प्रेम प्रकाश पूरण, पर पयोनिधि परी।
हितू श्री हरिप्रिया निरखति, निकट निज सहचरी॥

किन्तु,इस रस का अधिकारी कौन है ? यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है ? व्रजरस की इस खुमारी को क्या साधारण भक्त सहन कर पायेगा ? जिस श्रीपरमवन्दनीया

परमाराध्या रसरूपा श्रीराधा के रस सरोवर में 'रसो वै सः' श्रीकृष्ण भी डूबने-उतराने लगते हैं, वहाँ अन्य की क्या गति ? इसीलिये इन रसिकों ने कठोर चेतावनी भी दी है :--

सर्व प्रथम रहनी कठिन, कठिन सज्जनता पालन ।
मोह जीतिवो कठिन, कठिन कामादिक जारन ।।
जोग जुगुति अति कठिन, कठिन अनुदिन उर दहिवो ।।
कठिन तीव्र वैराग्य, कठिन पथ प्रीतिहिं गहिवो ।।
भजन रीति अतिही कठिन, सार समुझ तापै कठिन ।
दयाल ऐते सब कठिन, हरिदास प्राप्ति महा ही कठिन ।।

व्रजरस की प्राप्ति के लिये साधन भी इन महानुभावों ने बताये हैं, इन साधनों को आप भी अपनाइये, और तब व्रजरस माधुरी का आनन्द लीजिये :--

प्रथम सुनें भागौत भक्त मुख भगवत वानी ।
द्वितिय अराधै भक्ति, व्यास नव भाँति बखानी ।।
तृतीय करै गुरु समुझि, दक्ष सर्वज्ञ रसीलौ ।
चौथे होइ विरक्त बसै बनराज यशीलौ ।।
पाँचे भूलै देह सुधि, छुटे भावना रास की ।
सातैं पावै रीति रस, श्री स्वामी हरिदास की ।।

× × × ×

कुंजन ते उठि प्रात गात यमुना में धोवै ।
निधिवन करि दण्डौत बिहारी कौ मुख जोवै ।।
करै भावना बैठि स्वच्छ थल रहित उपाधा ।
घर घर लेइ प्रसाद लगै जब भोजन बाधा ।।
संग करै भगवत रसिक, कर करबा गूदरि गरे ।
वृन्दावन विहरत फिरै, युगल रूप नैननि भरे ।।

उक्त आचरणों के साथ यह प्रतिज्ञा भी करें, कि :--

रसना कटो जो अन रटो, निरखि अनफुटो नैंन ।
श्रवण फुटो जो अनसुनो, श्रीराधा जस बैन ।।
बेटी श्रीवृषभानुकी, मेरी जीवन प्राण ।
शपथ करौं वनभूमिकी, मेरे गति नहिं आन ।।
नरक पड़न आछो लगे, कुमरि चरण के हेत ।
तिन चरणन विन नहिं चहौं, सुन्दर कुंज निकेत ।।

और चाहे स्वर्ग में रहना पड़े या नरक में, परमार्थ व्यवहार कुछ भी बनो या न बनो, चाहे जितने सुख-दुख भोगने पड़ें, स्तुति और निन्दा सब कुछ सहने को

तैयार हूँ--किन्तु प्रिया-प्रियतम की केलि माधुरी न छूटने पावे, बस यही एक अभिलाषा है :--

स्वर्ग नक अपवर्ग, आस नहिं त्रास है।
जहाँ राखौ तहाँ रहौं मानि सुख रास है॥
परमारथ व्यवहार, वनौ कै ना वनो।
अंजन ह्वै ममनैंन, रसिक भगवत सनो॥
दुख सुख भुगते देह, नहिं कछु शंक है।
निन्दा अस्तुति करौ, राव क्या रंक है॥
देहु दया करि दान, न भूलों केलिकों।
भगवत वलित तमाल विलोकों केलिकों॥

हाँ ? सचमुच इस व्रजरस माधुरी का स्वाद ऐसे ही नहीं मिल जाता :--

हितू सहचरि निज कृपा करि, जासु तन चितवै जवै।
नित्य विभव विलास को सुख, सहज पावे सो तबै॥

—*—

श्रीराधा वल्लभ सम्प्रदाय की रस उपासना—

इस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य श्रीमहाप्रभु हितहरिवंश जी महाराज माने जाते हैं। इनके उपास्य श्रीराधावल्लभ नित्यनिकुंज में अहर्निश केलि क्रीड़ा में निमग्न रहते हैं, उसी अद्भुत रसमाधुरी को इन महानुभावों ने अपनी वाणी द्वारा स्वानन्द के लिये गाया है। व्रजरस की मधुरिमा में अपनी वाणी द्वारा कितना रस भर दिया है—इन आचार्योंने। यह कहने की नहीं, अनुभव की बात है। यहाँ प्रिया-प्रियतम दो देह एक प्राण हैं, ये युगल जोड़ी परस्पर इतनी अधिक ओत-प्रोत है कि इसका पृथक्करण संभव ही नहीं है, जल और तरङ्ग की भाँति मिले रहने पर भी इनकी प्रेम लीला प्रेम के ही कारण प्रतीत होती है, देखिये, उनकी वाणी में कैसा अद्भुत वर्णन है मानों प्रिया-प्रियतम परस्पर प्रेमालाप कर रहे हैं :—

जोई जोई प्यारी करै, सोई मोहि भावै।
भावै मोहि जोई, सोई सोई करैं प्यारे॥
मो को तो भावतो ठौर, प्यारे के नैनन में।
प्यारो भयो चाहे, मेरे नैंननि के तारे॥
मेरे तन मन प्रान हूं तैं, प्रीतम पिय आपने।
कोटिक प्रान, प्रीतम मौसों हारे॥
श्री हित हरिवंश हंस-हंसिनी स्यामल गौर॥
कहौ कौन करे, जल तरंगनि न्यारे॥

यद्यपि श्रीराधावल्लभ संप्रदाय में विरह को स्वीकार नहीं किया है, फिर भी मिलन अवस्था में भी एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विरह दशा व्याप्त रहती है, गौड़ीय संप्रदाय के आचार्यों ने तो इस रस का बड़ा ही विशद वर्णन किया है। उसी का दर्शन श्रीराधा-वल्लभ संप्रदाय की पदावलियों में मिलता है। आचार्य श्रीहरिवंश जी के पद में ऐसे ही विलक्षण भाव का वर्णन मिलता है, यह एक प्रेम वैचित्री है कि क्षणभर के लिये भी श्रीराधा के नेत्रों पर लटें आजाने पर दर्शन में बाधा होती है और ओझल-पन विरह का कारण बन जाता है :—

कहा कहौं इन नैंननि की बात।
ये अति प्रिया बदन अम्बुज रस, अटके अनतन जात॥
जब जब रुकत पलक सम्पुट लट, अति आतुर अकुलात।
लम्पट लव निमेष अन्तर ते, अलप कलप सत सात॥
श्रुति पर कंज दृगंजन कुच बिच, मृग मद ह्वै न समात।
हित हरिबंश नाभि सर जलचर, जाँचत साँवल गात॥

श्यामलगौर की इस अद्भुत जोड़ी में एक और विशेषता श्रीध्रुवदास जी बता रहे हैं कि जैसे एक ही रंग दो शीशी में भर देने पर रंग से उनमें भेद करना कठिन है, इसी प्रकार इन दोनों का परस्पर स्नेह, भाव, रुचि, एकरूपता—इतनी घुलीमिली हैं कि श्याम के रंग में श्यामा और श्यामा के रंग में श्याम रंग गये हैं तो यह कहना कठिन है कि कौन से लाल जी हैं और कौन लाड़िली हैं :—

प्रेम रासि दोउ रसिक वर, एक बैस रस एक।
निमिष न छूटत अंग अग, यहै दुहुँन के टेक॥
अद्भुत रुचि सखि प्रेम की, सहज परस्पर होय।
जैसे एकहि रंग सौं, भरियो सीसी दोय।
स्याम रंग स्यामा रंगी, स्यामा के रंग स्याम।
एक प्रान तन मन सहज, कहिवे कौं दोउ नाम॥
कबहुँ लाड़िली होत पिय, लालप्रिया ह्वै जात।
नहि जानत यह प्रेम रस, निसदिन कहाँ विहात॥

कुछ और पदों में इस रस माधुरी का रसपान कीजिये :—

दान दै री नवल किशोरी।
माँगत लाल लाड़िलौ नागर, प्रकट भई दिन-दिन की चोरी॥
नव नारंग कनक हीरावलि, विद्रुम सरस जलजमनिगोरी।
पूरित रस पीयूष युगल घट, कमल कदलि खंजन की जोरी॥

तो पै सकल सौंज दामिनी की, कत सतरात कुटिल दृग भोरी ।
नूपुर रव किंकिनी पिसुन घर, श्री हित हरिवंश कहत नहि थोरी ।।

× × × ×

चलहि किन मानिनि कुंज कुटीर ।
तो विनु कुँवर कोटि बनिता जुत, मथत मदन की पीर ।।
गद गद सुर विरहाकुल पुलकित, श्रवत विलोचन नीर ।
क्वासि क्वासि वृषभानुनन्दिनी, विलपत विपिन अधीर ।।
वंशी विशिख व्याल मालावलि, पंचानल पिक पीर ।
मलयज गरल हुतासन मारुत, साखा मृगरिपु चीर ।।
श्री हरिवंश परम कोमल चित, चपल चली पिय तीर ।
सुनि भयभीत वज्र को पंजर, सुरत-सूर रणवीर ।।

उक्तपद में आचार्य चरण ने व्रजरस में सर्वाधिक चर्चित परकीयारस को किस वैचित्री के साथ वर्णित किया है । इसी भाव का पोषक एक और पद देखिये :—

नन्द के लाल हरयौ मन मोर ।
हौं अपने मोतिन लर पोवति, काँकरि डारि गयो सखि भोर ।।
बंक विलोकनि चाल छबीली, रसिक शिरोमणि नन्दकिशोर ।
कहि कैसे मन रहत श्रवण सुनि, सरस मधुर मुरली की घोर ।।
इन्दु बदन गोविन्द के कारण, चितवन कौं भये नैंन चकोर ।
हितहरिवंश रसिकरस जुवती, तू लै मिलि सखी प्रान अकोर ।।

मधुरी मुरली की घोर ध्वनि सुनकर प्राण खिच गये, दौड़ी-दौड़ी लता मण्डप वेष्टित निकुञ्ज के समीप पहुँच गई, वहाँ युगलरूप का अद्भुत क्रीड़ा दृश्य देखा, क्या ही विलक्षण दर्शन है, पाठकगण सहचरी भाव से ही दर्शन करें :—

चलौ किन देखौ री खरे दोऊ कुञ्जन की परछाँही ।
एक भुजा गहि डार कदम्ब की दूजी भुज गरबाहीं ।।
छबीली छबि सों रही लटकि मनौं कनक बेलि लपटाहीं ।
जय श्री दामोदर हितप्रभु प्यारी के रंग रूप रस मांही ।।

यह रसराज की क्रीड़ा है, स्वयं साक्षात् रस ही मूर्त्तिमन्त होकर दो रूपों में परस्पर रस का आस्वादन कर रहा है, एक और झांकी देखिये :—

नहि सुरझै उरझनि प्रेम की, रही रोम रोम में भोय ।
राधे जू मोहन ह्वै रहीं, मोहन राधे होय ।।
ललित लतन तर रँगमगे, भये दोउ नैंन समान ।
नैंनन में नैंना अड़े, प्रानन सौं पगे प्रान ।।
चिबुक तरैं पिय कर दिये, शोभित है इहि भाय ।
नील कमल पर अरुन कमल, मानों खिले परम सचुपाय ।।

नागरिया रजनी घटै ज्यौं, चंद मलिन दुति होय।
त्यौं-त्यौं आलस रूप दुँहन कौ, उतै चौगुनौ होय॥

हाँ ! यह प्रीति का मार्ग ही ऐसा है, यहाँ सुमार्ग, कुमार्ग, अपमार्ग—सभी ठीक हैं, और कभी-कभी ये बेठीक भी होजाते हैं, प्रेम नदी का बाँध जब टूटता है तब इसे कोई रोक नहीं सकता, यह तो सावन-भादों की बाढ़ की तरह समुद्र की ओर दौड़ता है, ध्वनि में लोभित-चित्त मृग और दीपक-ज्योति पर आसक्त पतंग के प्रेम-बलिदान को कोई रोक नहीं सकता। इस प्रेम-देवता की उपासना ही ऐसी है, देखिये—श्रीहित हरिवंश जी ने इन भावों का कैसा चित्रण किया है :—

प्रीति न काहू की कान विचारे।
मारग अपमारग विथकित मन, को अनुसरत निवारे।
ज्यौं सरिता सावन जल उमगत, सन्मुखसिन्धु सिधारे।
ज्यौं नादहिं मन दिये कुरंगनि, प्रगट पारधी मारे॥
जय श्रीहित हरिवंश हिलगसारंग ज्यौं, सलभ शरीरहिं जारे।
नाइक निपुन नवन मोहन विनु, कौन अपनपौ हारे॥

इसलिये आचार्य श्रीहित हरिवंश जी इस प्रीति रस के अनुयायी को पुनः एक बार चेतावनी देते हुए कहते हैं कि यदि प्रीति करना है तो बड़ी सावधानी से प्रीति करो, वरना बिना मौत मारे जाओगे,बड़ा ही टेड़ा रास्ता है,अतः केवल श्रीश्यामश्यामा के चरण कमलों में ही प्रेम करो,अन्यथा वैसी ही दुर्गति होगी, जैसी इस पद के उदाहरणों में बताई गई है, क्योंकि मन तो एक है, इस को जगह-जगह बिखेरने से आज तक किसी ने भी सुख नहीं पाया, अतः निष्ठापूर्वक युगल सरकार के चरणों में ही इसे बाँध दो :—

यह जु एक मन बहुत ठौर करि, कहि कौनें सचु पायौ।
जहँ तहँ विपति जार युवती लौं, प्रगट पिंगला गायौ॥
द्वै तुरंग पर जोर चढ़त हटि, परत कौन पै धायौ।
कहिधौं कौंन अंक पर राखे, ज्यौं गनिका सुत जायौ॥
श्रीहित हरिवंश प्रपंच बंच सब, काल ब्याल को खायौ।
यह जिय जानि श्यामश्यामा पद, कमल संगि सिर नायौ॥

और अन्त में ब्रजरसमाधुरी का पिपासु रसिक भक्त एकान्त साधना में लीन होकर अन्तः करण की समस्त चित्त वृत्तियों को सब ओर से तोड़कर तन्मयता एवं आत्म विस्मृति के साथ नन्दनन्दन ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दर की परमाराधा रसराजरूपा वृषभानुनन्दिनी श्रीकिशोरी जी का इस प्रकार ध्यान करता हुआ, उनकी चरणदासी बनकर मञ्जरी भाव से उनके चरणों की सन्निधि में बैठकर रसमाधुरी का पान करते हुए इस प्रकार ध्यान करे :—

व्रज नव तरुणि–मुकुटमणि श्यामा आज बनी।
नख शिख लौं अँग अँग माधुरी, मोहे श्याम धनी ॥
ज्यौं राजत कबरी गूँथित कच, कनक कंज बदनी।
चिकुर चन्द्रकनि बीच अर्ध बिधु, मानौं ग्रसित फनी ॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी, पिय सीमन्त ठनी।
भ्रकुटि काम कोदण्ड नैंन सर, कज्जल रेख अनी ॥
तरल तिलक ताटंक गंड पर, नासा जलज मनी।
दसन कुन्द सरसाधर पल्लव, प्रीतम मन समनी ॥
चिबुक मध्य अतिचारू सहज सखि, सांवल बिन्दु कनी।
प्रीतम प्राण रतन संपुट कुच, कंचुकि कसिव तनी ॥
भुज मृणाल छल हरत वलय युत, परस सरस श्रवनी।
श्यामशीश तरु मनों मिडवारी, रचि-पचि रुचिर बनी ॥
नाभि गम्भीर मीन मोहन-मन, खेलन को ह्रदनी।
कृषि कटि पुथुनितम्ब किंकिनिव्रत, कदलि खंभजवनी ॥
पद अम्बुज जावक युत भूषण, प्रीतम उर अवनी।
नव-नव भाय विलोभि भामइभ, विहरत बर करनी ॥
जयश्रीहितहरिवंश प्रशंसित श्यामा, कीरति विशद घनी।
गावत श्रवणन सुनत सुखाकर, विश्व दुरित दवनी ॥

इस अगाध सौंदर्य-माधुर्य-लावण्य-सिंधु की कोई सीमा नहीं है, कोई पारावार नही हैं, कोटि कल्प तक करोड़ों रसना भी इस रूपमाधुरी का वर्णन करने में असमर्थ हैं। समस्त लोकों में कहीं भी तो इस दिव्य रूप छटा की उपमा नहीं है, रससागर नटनागर स्वयं ही जिसके भ्रू विलास पर न्यौछावर होते रहते हैं, वह रूप माधुरी की सीमा है, उससे परे कोई सुन्दरता नाम की वस्तु नहीं है :—

देखो माई सुन्दरता की सींवा।
व्रज नव तरुणि कदम्ब नागरी, निरखि करत अध ग्रीवा ॥
जो कोउ कोटि कलप लगि जीवै, रसना कोटिक पावै।
तऊ रुचिर बदनारविन्द की, शोभा कहत न आवै ॥
देवलोक भूलोक रसातल, सुनि कवि कुल मति डरिये।
सहज माधुरी अङ्ग अङ्ग की, कहि कासौं पटतरिये ॥
जय श्रीहितहरिवंश प्रताप-रूप-गुण, वय बल श्याम उजागर।
जाको भ्रू विलास बस पशुरिव, दिन विथकित रस सागर ॥

—※—

श्रीवल्लभ सम्प्रदाय की रस उपासना—

आचार्यचरण श्रीवल्लभ की रस-उपासना पद्धति बहुत ही विलक्षण है, ब्रजरस-माधुरी में उनका स्थान अन्यतम है, इस सम्प्रदाय में भी संस्कृत और हिन्दी में माधुर्यरस का प्रचुर वर्णन हुआ है। श्रीवल्लभाचार्य से लेकर अष्टछाप के कवियों तथा उनके बाद भी महानुभावों ने श्रीकृष्ण की बाल लीला या किशोर लीलाओं का गुणगान किया है, ये महापुरुष श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं में सखाभाव और शृङ्गार-लीलाओं में सखीरूप से उपस्थित हैं। इन महानुभावों के लाखों पद हैं, जिनमें संसारी जीव की दयनीय दशाओं से लेकर प्रभु के साक्षात्कार तक का विशद वर्णन है, श्रीकृष्ण के नाम, रूप, लीला और धाम का अनूठा प्रतिपादन हुआ है। श्रीसूरदास जी अन्तर्भाविना में निमग्न अपने मन को उस दिव्य प्रदेश में ले जाना चाहते हैं, जहाँ श्रीकृष्ण नामामृत की रसधारा प्रवाहित होरही है, देखिये :—

सुआ ! चलु वा वन को रसु लीजै।
जा वन कृष्ण नाम-अमरित-रस, स्रवन पात्र भरि पीजै॥
को तेरो पुत्र पिता तू काको, मिथ्या भ्रम जग केरो।
काल-मंजार लै जैहै तोकौं, तू कहै मेरो-मेरो॥
हरि नाना रस भुकति-छेत्र चलु, तो कौं हौं दिखराऊँ।
'सूरदास' साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ॥

वैसे इस सम्प्रदाय में वात्सल्य रस की भावना का ही अधिक महत्व है, जो इसका स्वायीभाव है, गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्य श्रीरूप गोस्वामी आदि ने भी वात्सल्य को स्थायी माना है, क्योंकि इसमें विशुद्ध निःस्वार्थ प्रेम की भावना व्यक्त होती है। अष्टछाप के कवियों की दृष्टि से वात्सल्य रस अथवा सख्य रस का वर्णन हम प्रारम्भ में कर चुके हैं, जिसमें श्रीकृष्ण के प्रातउत्थापन से लेकर गौचारण और संध्या-शयन लीला तक का दिग्दर्शन कराया है। यहाँ इस प्रकरण में हम श्रीवल्लभ और उनके अनुगत अष्टछाप के कवियों द्वारा गाये गये माधुर्य अर्थात् शृङ्गार रस के संबंध में ही विवेचन करेंगे। वल्लभ सम्प्रदाय में नित्यबिहार के साथ गौड़ीय सम्प्रदाय की भांति परकीया भाव का साम्राज्य भी है, श्रीकिशोरी जहाँ उनकी नित्य-प्रिया है, वहाँ चन्द्रावलि आदि अन्य सखियों के साथ परकीया भी हैं। श्रीसूरदास जी की वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा तो प्रेम की परम-चरम-सीमा परकीया भाव की श्रेष्ठ नायिका बनी बैठी हैं, इनके पूर्वानुराग की दशा देखिये—घर में अकेली श्रीराधा के मन की दशा कैसी हो रही है, घर में तो मन ही नहीं लगता, माता-पिता, गुरुजन-परिजन कोई भी तो अच्छे नहीं लग रहे हैं :—

नेकु नहीं घर में मन लागत।
पिता मातु गुरुजन परबोधत, नीके बचन बान सम लागत॥

तिनकौं धिग धिग कहति मनहि मन,इनकौं बनैं भलै ही त्यागत ।
स्याम विमुख नर नारि वृथा सब, कैसे मन इन सौं अनुरागत ।।
इनको बदन प्रात दरसै जनि, बार बार विधि सौं यह मांगत ।
यह तन सूर स्याम कौं अरप्यौ, नेकु टरै नहिं सोवत जागत ।।

श्यामसुन्दर से मिलने की छटपटाहट में अनमनी श्रीराधा का मन कहीं भी नहीं लगता, किशोरी जी के ये भाव छिपाये छिप भी तो नहीं सकते, माता-पिता और सखी सहचरियों के आगे मुखाकृति को कितना ही प्रसन्न रखना चाहती है, पर स्वाभाविक प्रसन्नता आती ही नहीं है, किशोरी जी की मां ने श्रीराधा के मुख पर छाये भावों को भांपलिया है, यह प्रतिदिन सखियों के साथ संकेत वन में खेलने जाती है, ये ही सखियाँ फिर इसकी चर्चा चलाती हैं, अब इसे घर से बाहर नहीं जाने दूंगी, मां प्यार की भाषा में नन्दिनी को समझाने लगती है :—

अब राधा तू भई सयानी ।
मेरी सीख मानि हिरदैं धरि, जँह तँह डोलति बुद्धि अयानी ।।
भई लाज की सीमा तन में, सुनि यह बात कुँवरि मुसकानी ।
हँसति कहा मैं कहति भली तोहि,सुनति नहीं लोगनि की बानी ।।
आजहिं तैं कहुँ जान न दैहौं, मा ! तेरी कछु अकथ कहानी ।
सूरस्याम के सङ्ग न जैहौं, जा कारन तू मोहि सुगानी ।।

श्रीकीर्तिदा मैया ने जब से डाट दिया है, तब से श्रीराधा की दशा तो और भी विचित्र होगई है, किशोरी ने मौन धारण कर लिया है, न देखना न सुनना । खान-पान, साज-शृङ्गार सभी बेमन से होरहे है, मुख म्लान होगया है, दृष्टि नीची होगई है, पलक भारी होगये हैं, सखी-सहचरी बोलने आती है, पर कौन सुनता है, कौन बोलता है । श्रीराधा की दशा देख कर मां चिन्तित हो उठती हैं, सखियों को बुलाती हैं, उनके साथ हँसने–खेलने को कहती हैं, परन्तु कोई असर नहीं होता । तब एक चतुर सखी किशोरी जी की मां के कान में कुछ कह देती है, इधर दूसरी सखी किशोरी के कान में भी मंत्र डाल देती है, बस फिर क्या था । श्रीराधा का मुख कमल खिल उठता है । माता सखियों को आज्ञा देती है, गोपियो ! राधा को साथ लेकर श्रीयमुनाजल भर ने जाओ । यमुना स्नान भी कर आना । राधा कई दिन से खेलने नहीं गई है, यमुना किनारे इसका मन प्रसन्न हो जायेगा । पर देखना, राधा को अकेली नहीं छोड़ना । श्रीराधा को तो पहले ही मंत्र मिल चुका है कि आज श्यामसुन्दर यमुना तट पर मिलेंगे । फिर क्या था, यमुना तट पर सखी-मंडल के साथ श्रीराधा और श्यामसुन्दर की भेंट होगई और देखते ही जो दशा हुई है, उसका अनुभव रसिकजन ही कर सकते हैं :—

राधे निरखि भूली अंग ।
नंद नंदन रूप पर गति, मति भई तनु पंग ।।

इत सकुच अति सखिन कौ, उत होति अपनी हानि।
ज्ञान करि अनुमान कीन्हौं, अबहि लैहैं जानि।।
चतुर सखियनि परखि लीन्हीं, समुझि भई गँवारि।
सबै मिलि इत न्हान लागीं, ताहि दियौ विसारि।।
नागरी मुख स्याम निरखति, कबहुँ सखियनि हेरि।
सूर राधा लखति नाहीं, इन दई अबडेरि।।

× × × ×

चितवनि रोकैं हू न रही।
श्यामसुन्दर सिंधु सनमुख, सरित उमँगि बही।।
प्रेम सलिल प्रवाह भँवरनि, मिलि न थाह लही।
लोभ लहरि कटाच्छ घूंघट, पट करार ढही।।
थके पल पथि नाव धीरज, परत नहिंन गही।
मिली सूर सुभाव श्यामहि, फेरिहू न चही।।

श्रीकृष्ण का मुख कमल अवलोकन करते ही श्रीराधा के नेत्र अनुराग से भर उठे, चकोरी जैसे चन्द्र-पीयूष को पान कर रही हो, उधर श्रीकृष्ण की दशा मानों विकसित कमल-पराग का मधुकर पान कर रहा हो, दोनों ओर से स्नेहिल अनुराग की घनीभूत घटा झुक आई हो। दोनों एक दूसरे को निर्निमेष देखते ही रह गये। पहले तो गोपियाँ थोड़ी देर के लिये अलग होगई थीं, वे सब दूसरी तरफ आकर स्नान करने लगीं थीं, परन्तु श्रीराधा को घर पहुँचाने का दायित्व भी आज इनके ऊपर है, अतः शीघ्र ही श्रीकिशोरी को सचेत किया और साथ लेकर वृषभानुपुर की ओर चल पड़ी हैं, मार्ग में सहचरी किशोरियों का समूह प्रसन्नवदना श्रीराधा से रस-वर्धक ठिठौली करता जा रहा है, सखियाँ श्रीराधा से छेड़खानी करने के उद्देश्य से कहती है :—

कहि राधा ! हरि कैसे हैं ?
तेरे मन भाये की नाहीं, की सुन्दर की जैसे हैं।।
की पुनि हमहिं दुराव करौगी, की कै हौं वे जैसे हैं।
की हम तुम सौं कहति रही ज्यौं, सांच कहौ की तैसे हैं।।
नटवर बेष काछनी काछे, अंगनि रति पति सैसे हैं।।

यह प्रेम का जादू विलक्षण है, यह एक टोना है या कि मंत्र है, जंत्र है, या कि यह कोई रोग है या उन्माद है—न जाने यह क्या है, जिसको लग जाता है, वह भी बता नहीं पाता। न इसकी कोई औषधि है, न कोई निदान है। परन्तु प्रेमियो ! सावधान ! यह श्रीराधाकृष्ण की प्रेमलीला है, यह दिव्य है, अलौकिक है, गुण रहित है, संसार की दुर्गंध यहाँ नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि हम अपनी दुर्गंधि-

युक्त चर्मेन्द्रियों के माध्यम से उस दिव्य लीला की लौकिक कल्पना कर बैठें, यदि ऐसा हो गया तो घोर पतन हो जायेगा। अस्तुता आइये, चलें वहीं। उसी दिव्य झांकी का दर्शन करें। श्रीराधा को प्रियतम श्यामसुन्दर के दर्शन की चटपटी लगी ही रहती है, उस दिन सखियों के साथ यमुना तट पर प्रियतम से मिलन हुआ था, पर मिलन में गोपियां बाधक बन गई थीं, यदि नन्दनंदन अकेले में मिल जाँय तो ? बस फिर तो मन-मानी हो जायेगी, उनकी कल्पना कभी मिथ्या थोड़े ही हो सकती है। लीला शक्ति ने एक लीला की रचना कर डाली, श्रीराधा के गले का मुक्ताहार खोगया है ? हां पता नहीं, यमुना पर स्नान करते समय गिर गया, या किसी सखी ने यमुना-स्नान के समय गले से उतार लिया या चोरी कर लिया या कहीं महल के भीतर ही आसन-सिंहासन पर रक्खा भूल गई हूँ। मैया ! तेरे डर के कारण मैंने बताया भी नहीं और आज रात्रि-भर मुझे नींद भी नहीं आई। मां ! मैं बड़े ही अँधेरे यमुना किनारे मुक्ताहार को ढूढ़ने गई थी :—

सुनि री ! मैया ! कालि हौं मुतिसिरी गँवाई।
सखिनि संग जमुना गई धौं उननि चुराई॥
कीधौं जलही मैं गई यह सुधि नहिं मोरे।
तब तैं मैं पछताति हौं, कहति न डर तेरे॥
पलक नहीं निसि मँह लगी, मोहि शपथ री तेरी।
इहि डर तैं मैं आजु ही अति उठी सबेरी॥
महरि सुनत चकित भई, मुख ज्बाब न आवै।
सूर राधिका गुण भरी, कोउ पार न पावै॥

मुक्ताहार खो जाने का तो बहाना था, यह बहाना सफल हुआ, प्रातः अँधेरे में ही उठकर निकुञ्जस्थली में प्रियतम प्राणनाथ श्रीकृष्ण के साथ मिलन का जो अनुपम सुख मिला, उसके आगे मुक्ताहार खोने का झूँठा बहाना भी कितना प्रिय लगा है, इसे प्रिय मिलन का अनुभवी ही जान सकता है, व्रजरस-माधुरी में यह सब दूषण नहीं भूषण हैं, प्रियतम से मिलने के प्रेमी के कितने झूठे-सच्चे और तरीके होते हैं, जो सत्य करके दर्शाये जाते हैं, यही इस रस-मार्गी प्रेमी की विशेषता है, सूरदास जी के शब्दों में देखिये :—

राधा अतिही चतुर प्रवीन।
कृष्ण कौं सुख दै चली हँसि, हंसगति कटि छीन॥
हार के मिस इहां आई, श्याम मनि के काज।
भयौ सब पूरन मनोरथ, मिले श्री ब्रजराज॥
गाँठि आँचर छोरिकै, मोतिसरी लीन्हीं हाथ।
सखी आवत देखि राधा, लई ताकौं साथ॥

जुवति बूझति कहाँ नागरि, निसि गई इक याम।
सूर ब्यौरौ कहि सुनायौ, मैं गई तेहि काम॥

अब तक मिलन की तड़फन थी, अब प्रिय से संयोग हो गया है जब प्रियतम से मिलन हो गया है तो कोई कुछ भी क्यों न कहो ? लोक हँसो या परलोक विगड़ो या कुल की परम्परा टूट जाओ ? सजनी ! अब तो मन के सच्चे मीत प्यारे श्याम-सुन्दर ही हैं। अष्ट छाप के दूसरे रसिक कवि श्री कुम्भनदासजी के शब्दों में सुनियेः—

हिलगनि कठिन है या मन की।
जाके लिये सुनो मेरी सजनी, लाज गई सब तन की॥
लोक हँसो परलोक नसाओ, और आओ कुलगारी।
सो क्यों रहे ताहि बिनु देखें, जो जाको हितकारी॥
रस लुब्धक निमिष नहि छाँड़त,ज्यों आधीन मृग गाने।
कुम्भनदास यह स्नेह मरम को,श्री गोवरधन धर जाने॥

दो प्रेमियों के बीच बँधी हिलग की गाँठ कुछ ऐसी उलझी होती है कि बस यह सहते तो बनती है, पर कहते नहीं बनती, कहें भी किसको। यह एक ऐसी पीड़ा है, जिसे दूसरा समझ ही नहीं सकता, इसकी पहचान तो श्री गिरिधरन प्रभु ही जानते हैं, श्री चतुर्भुज दासजी अष्ट छाप के कवि इन भावों को इस प्रकार व्यक्त करते हैं:—

बात हिलग की कासों कहिये।
सुन री सखी व्यवस्था या मन की,
समुझि समुझि मन चुप कर रहिये॥
मरमी विना मरम को जानै,
यह उपहास जान जग सहिये।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधरन मिलैं जब,
तबहीं सब सुख पहिये॥

और जब लीला पुरुषोत्तम और लीलाधीश्वरी दोनों मिलन-संयोग में डूब जाते हैं तो दोनों एक रूप, एक रंग, एक स्वभाव और सब कुछ एक हीं एक हो जाते हैं, एक ही एक तो वे हैं ही, केवल आस्वादन के लिये दो रूप हैं, देखिये- उनकी एकरूपता :—

राधा श्याम श्याम राधा रंग।
पिय प्यारी कौं हिरदय राखत, प्यारी रहति सदा हिय के सङ्ग॥
नागरि नैन चकोर वदन-ससि, प्रिय मधुकर अम्बुज सुन्दरि मुख।
चाहत अरस परस ऐसैं करि, हरि नागरि नागरि नागर सुख॥
सुख दुख सोचि रहत मन ही मन, तब जानत तन कौ यह कारन।
सुनहु सूर कुलकानि जीय दुख, दोऊ फल दोउ करत विचारन॥

वाणीकार सन्तों की दिव्य रसमयी वाणियों में कैसे अद्भुत भाव हैं, यह साधारण जन की समझ से वाहर है, इन भावों के समझने के लिये वैसा ही दिव्य पवित्र हृदय चाहिये, अन्यथा भयंकर अपराध की चोट घोर पतन की ओर ले जायेगी। श्रीसूरदास जी की दृष्टि से श्रीराधा रूप माधुरी का अवलोकन कीजिये :—

आज बनीं नव रंग किशोरी। रसिक कुँवर मोहन की जोरी॥
विथुरी अलक शिथिल कटि डोरी। कनक लता मनो पवन झकोरी॥
नश शिख शोणित कछु छबि थोरी। दर्पण लै देख्यो मुख गोरी॥
रस लूटत अति ही भई भोरी। सूर सखी डारति तन तोरी॥

× × × ×

खंजन नैंन रूप रस माते।
अतिशय चारू चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते॥
उड़ि-उड़ि जात निकट श्रवणन के, उरझि-पुरझि ताटंक समाते।
सूरदास अंजन गुण अटके, न तरु अबहिं उड़ि जाते॥

श्रीकुंभनदास जी की रस माधुरी की एक अनूठी कल्पना रस की चरम सीमा पर पहुँचा देती है, सौन्दर्य लावण्य उदधि की तरङ्गायित कनक लता-सी श्रीराधा अपने सर्वाङ्ग माधुर्य को श्रीकृष्ण पर उड़ेल देना चाहती हैं, और वे हठ पूर्वक प्रियतम से वृन्दाविपिन के लता कुञ्जों में चलकर रस लूटने का आग्रह कर रही है :—

तू चल नन्द नन्दन बन बोली।
कर शृङ्गार चञ्चल मृग नयनी, पहेरे कुसुंभी चोली॥
कुच कठोर नयन अनियारे, ले चलु भेंट अमोली।
कुम्भनदास लाल गिरिधर सों, मिलि अन्तर पट खोली॥

वे कुंजे कितनी मनोरम हैं—जहाँ प्रिया-प्रियतम का विलास होता है, सुन्दर सुहावना वन-उपवन। सभी प्रकार के वृक्ष-वल्लरी लतायें झूम रही हैं, तरह-तरह की मादकता लिये सुगन्धि पुष्प खिल रहे हैं, सभी ऋतुयें सेवा में उपस्थित हैं, स्वयं ऋतु-राज अपने दिव्य रूप से यहाँ सेवा करता है, लता पुंजों के मध्य एक मणिमय दिव्य पलंग पर मखमली गद्दे तोषक तकिये सुसज्जित हैं। रूप गर्वीली श्याम रस छकी प्रियतम मदमाती किशोरी प्यारे श्यामसुन्दर के मिलन-संयोग के उन्माद में खोयी पलंग पर पौढ़ी-लेटी हुई श्यामाङ्ग-माधुरी का रसपान करने को आतुर हो रही है, उसी समय ये रसिक वर दिव्य प्रेम के भिखारी श्रीनन्ददास के प्रभु प्रियतमा व्रजेश्वरी श्रीराधा के चरणों में पलोट रहे हैं :—

चापत चरण मोहन लाल।
कुँवरि राधे पलंग पौढ़ीं, सुन्दरी नव बाल॥

कबहुँ लै-लै नयन लावत, कबहुँ लावत भाल।
नन्ददास प्रभु देखिये ये, प्रीति के प्रतिपाल॥

यह कोई अनहोनी नहीं है, ये सच्ची प्रीति के परिपालक हैं, रसखान ने भी यही सब कुछ देखा था :—

"देख्यौ दुस्यौ वह कुंज कुटीर में, बैठ्यौ पलोटतु राधिका पाइन"

हां ! श्रीराधा के दिव्य चरणों में ऐसी ही कुछ अद्भुत शक्ति है–जो ब्रह्मादि देवों के नियामक त्रैलोक्य के अधिपति अनन्त ब्रह्माण्डों को नचाने वाले श्रीकृष्ण को भी वश में करके रखती है। तभी तो ये प्रेम पुजारी बने, नटखट नन्दनन्दन श्याम-सुन्दर क्षण-क्षण में श्रीश्यामा के चरणों की शरण लेते हैं। श्रीपरमानन्द दासजी ने भी क्या खूब दर्शन किया है :—

धनि धनि राधिका के चरन।
सुभग शीतल अति सुकोमल, कमल के से बरन॥
रसिक लाल मनमोद कारी, विरह सागर तरन।
दास परमानन्द छिन-छिन, श्याम जिनकी शरण॥

स्नेह की प्रगाढ़ स्निग्धता में जब प्रियतम पैरों पड़ता हो, तब गर्विता को मान होना भी स्वाभाविक होता है, मान-गुमान रस में वृद्धि करता है, अतः प्रिया का रूसना, रूठना या मान कर बैठना रस पिपासु को और अधिक उत्सुकता का वर्धक होता है। रूप गर्विता में यदि मान का रोष नहीं आयेगा तो मिलन-संयोग-जन्य रस की अनुभूति पूर्ण नही हो पायेगी। इसलिये ये आज मानिनी प्रिया श्रीराधा, चरण-चांपते हुए श्रीकृष्ण से मान कर बैठी हैं, मान की घटना भी कैसी विचित्र है, जो मानिनी के लिये सहज स्वाभाविक है, प्रिया श्रीराधा प्रियतम के गले में बाहुओं को लपेटे वक्षःस्थल का दर्शन कर रही हैं, आज उनकी दृष्टि में एक नई बात पैदा हो गई है। श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर पड़े मणि-मुक्ताओं के हार में श्रीराधा को अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है, आज प्रथम बार उन्होंने अपनी ही छाया को श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर आलिङ्गित होते देखा है बस मानिनी का मान उभर बैठा और वे कहने लगीं :—

अब जानी पिय बात तुम्हारी।
मो सौं तुम मुँह की मिलवत हो, भावति है वह प्यारी॥
राखे रहत हृदय पर जाको, धन्य भाग हैं ताके।
ऐसी कहौ लखी नहिं अबलौं, बस्य भये हो याके॥
भली करी यह बात जनाई, प्रगट दिखाई मोहि।
सूर श्याम यह प्रान पियारी, उर में राखी पोहि॥

अटपटी बात सुनकर एक बार तो श्यामसुन्दर चकित रह गये, जब प्रिया ने

प्रियतम को अनमने मन देखा तो कुछ ऊपर की झूँठी हँसी में हंस पड़ी, किन्तु हृदय में रोष व्याप्त है। प्रिया के हँसते ही प्रतिबिम्ब की छाया भी हँस पड़ी, तब तो श्यामा का क्रोध और भी बढ़ गया और कहने लगीं कि तू मुझे सताने को मेरे प्रियतम के पास आई है, अरी तू ही बड़भागिन है—कह कर प्रिया राधा लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगीं। तब तो श्रीकृष्ण चिन्तित हो गये, अनेक प्रकार मानिनी भामिनी को मना रहे हैं :—

मान करयौ पिय बिनु अपराधहिं।
तनु दाहति बिनु काज आपनो, कहत उरत जिय बादहिं॥
कहा रही मुख मूंदि भामिनी, मोहिं चूक कछु नाँहि।
झझकि रही क्यों चतुर नागरी, देखि आपनी छाँहि॥
अजहूँ दूरि करौ रिस उरतें, हिरदै ज्ञान विचारौ।
सूर श्याम कहि-कहि पचि हारे, हठि कीन्हौं जिय भारौ॥

श्यामसुन्दर तो मनाते-मनाते हार गये, पर यह मान साधारण मानिनी का मान नहीं है, यह विश्व विमोहिनी का मान है, मनाने वाले भी विश्वमोहन हैं, देखें किसकी हार-जीत होती है, पर यहाँ हारने वाला ही जीतता है, जीतने वाला ही हारता है, श्रीकृष्ण थक कर एक तरफ जा बैठ गये हैं, उन्हें भी राधा-विरह उत्पन्न हो गया है—उसी समय सेवा का अनुकूल समय पाकर सहचरी सखियां प्रवेश करती हैं। देखती हैं, दोनों एक दूसरे से रूसे-रूठे बैठे हैं। पहले वे लालजी को चिढ़ाती हैं, ठगोरी करती हैं, नाना भांति के आमोद-प्रमोद कर श्रीकृष्ण से कहती हैं—श्याम-सुन्दर! यदि हमें भी अङ्क भरि भेटने का प्रसाद दो, तो हम आपकी प्रिया को अभी अभी मना लाती हैं, भोले-भण्डारी शिर हिलाकर स्वीकृति दे देते हैं। तब सखियां कीर्तिकुमारी को घेर कर बैठ जाती हैं और समझाने लगती हैं :—

श्यामा तू अति श्यामहि भावै।
बैठत उठत चलत गौ-चारत, तेरी ही लीला गावै॥
पोतै पीत बसन भूषण सजि, पीत धातु अँगलावै।
चन्द्रानन सुनि मोर चन्द्रिका, माथे मुकुट बनावै॥
अति अनुराग सैन संभ्रम मिलि, संग परम सुख पावै।
विछुरत तोहि क्वासि राधा कहि, कुञ्ज-कुञ्ज प्रतिधावै॥
तेरौ चित्र लिखें अरु निरखें, वासर विरह गवावै।
सूरदास रस-रसी रसिक सौं, अन्तर क्यों करि आवै॥

पुनः गम्भीरता से सखियां श्रीराधा को यह स्मरण दिलाती हैं कि तुम्हारा यह नव यौवन-जीवन श्रीकृष्ण की सेवा के लिये ही प्रगट हुआ है, इसका एक-एक क्षण बड़ा ही मूल्यवान है, सखि राधा! तुझे श्यामसुन्दर की प्राप्ति तेरे पूर्व पुण्यों के फल से ही हुई है, अतः मानिनी मान छोड़कर प्रिय के विरह-संताप को दूर कर उन्हें सुखी करो :—

रहि री मानिनि मान न कीजे।
यह जौवन अँजुरी कौ जल है, ज्यौं गुपाल मांगें त्यौं दीजै ।।
छिन छिन घटति बढ़ति नहिं रजनी,ज्यौं ज्यौं कला चन्द्र की छीजै ।
पूरब पुण्य सुकृत फल तेरौ, काहे न रूप नैंन भरि पीजै ।।
सौंह करति तेरे पाइन की, ऐसी जिअनि दशहु दिन जीजै ।
सूर सुजीवन सफल जगत की, बैरी बाँधि विवस करि लीजै ।।

और अचानक ही उस प्रफुल्लित पल्लवित,पुष्पित कुसुमित उपवन में मेघों की घन-घोर घटायें-उमड़-घुमड़कर ऊपर छाजाती हैं, मानो वे भी प्रिया प्रियतम को मनाने ही आये हों, चारों ओर जल ही जल भर जाता है, हरित लता द्रुमवेलि से वेष्टित कदम्ब कुञ्जों के मध्य सखियाँ रूसे-रूठे श्याम-श्यामा को मना रही हैं, वे पुनः काञ्चन गौराङ्गी, श्याम-प्रिया श्रीराधा से अनुरोध करती हैं. किशोरी जी ? :—

यह ऋतु रूसिवे की नाँहि ।
वरषत मेघ मेदिनी के हित, प्रीतम हरषि मिलाहिं ।।
जे बेली ग्रीषम रितु डाहीं, ते तरुवर लपटाहिं ।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहिं ।।
जोवन धन है दिबस चारि को, ज्यौं बदरी की छाहिं ।
मैं दम्पति रस रीति कही है, समुझि चतुर मन माहिं ।।
सूरदास उठि चलहु राधिका, सँग दूती पिय पाहिं ।।

सखियों का प्रयास सफल हुआ, मानिनी श्रीराधा श्यामसुन्दर के साथ केवल हिंड़ौला झूलने को प्रस्तुत हो गई हैं, पावस ऋतु का आकस्मिक आगमन कीर्ति कुमारी का मान-भङ्ग करने ही आया है, रिमझिम वर्षा की मन्द-मन्द फुहारों में कदम्ब कुंजों की डालियों पर प्रियतम के साथ झूला झूलने को उत्सुक प्रिया ने मान को उतार फैंका और प्रियतम से आकर लिपट गईं । झूला पर विराजमान युगल दम्पति की शोभा देखकर कोटि-कोटि काम भी लज्जित हो रहे हैं :—

झूलत श्यामा श्याम संग ।
निरखि दम्पति अंग शोभा, लजित कोटि अनंग ।।
मन्द त्रिविध वयारि शीतल, अंग अंग सुगन्ध ।
मचत उड़त सुवास सँग मन, रहे मधुकर बंध ।।
तैसि ये जमुना ये सुभग जहँ, रच्यौ रंग हिंडोल ।
तैसि ये ब्रजवधू बनि हरि, चितै लोचन कौर ।।
तैसोई ये वृन्दाविपिन धन, कुंज द्वार बिहार ।
बिपुल गोपी विपुल बन गृह, रवन नन्दकुमार ।।

रसिक महानुभावों की इन महनीय रस-विधाओं का वर्णन भी शक्ति से बाहर

की बात है, इनका कथन, श्रवण, चिन्तन भी बिना अधिकारी के करना अपराध है, न जाने कौन से दिव्य लोक की भाव सीमाओं पर विचरण करते हुए इन महानुभावों ने रसमयी लीलाओं को गाया है, क्षुद्र संसारी जीव तो इनको सुनकर ही तिलमिला उठेगा। इसीलिये ये महानुभाव श्रीसूरदास जी भी यही कहते हैं कि प्रियाप्रियतम की शृङ्गार लीलाओं के श्रवण, कीर्त्तन, दर्शन या अनुभव करने के लिये पुरुष को पुरुष भाव त्याग कर सखी भाव धारण करना ही पड़ेगा, केवल सखी वेश–वस्त्राभूषणादि नहीं। तभी इस रस देश में प्रवेश मिलेगा, अन्यथा ढक्का दे निकाल बाहर कर दिया जायेगा :--

भजसखी भाव भावक देश।
कोटि साधन करो कोऊ, तोऊ न मानत सेव॥
ध्रूमकेतु कुमार मानत, कौन मारग प्रीति।
पुरुष तैं सखी भाव उपजैं, सबै उलटी रीति॥
उलटि भूषण बसन पहिरैं, भावसौं संजोय।
उलटि अंकनि दिये मुद्रा, वरन सूधे होय॥
वेद विधि की गम्य नाहीं, प्रीति की पहिचान।
व्रज वधू बश किये मोहन, सूर चतुर सजान॥

और इस प्रकार बल्लभ सम्प्रदाय की दृष्टि से संक्षेप में ही मधुर रस की भावमय परिपूर्ण व्यञ्जना यहाँ अंकित हुई है। वैसे इस सम्प्रदाय के आचार्यों में अधिकांश ने सखा भाव को ही प्राथमिकता दी है, क्योंकि आचार्य चरण श्रीवल्लभाचार्य मूलतःबालभाव के उपासक हैं, उनके परवर्त्ती स्वयं श्रीसूरदास जी का भी सख्यभाव ही चित्त की मुख्य धारा प्रतीत होती है, जिसके द्वारा वात्सल्य और माधुर्य के दोनों तट सिंचित होते प्रतीत होते रहते हैं। संख्य और वात्सल्य का वर्णन हम प्रारम्भ में कर चुके हैं।

श्रीचैतन्य सम्प्रदाय की रसउपासना—

श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण और श्रीराधा के समन्वित रूप में अवतार माने जाते हैं, उनका अन्तरङ्ग श्रीकृष्णमय और बहिरङ्ग रूप श्रीराधामय है। गौड़ीय वैष्णवाचार्यों ने जैसे श्रीकृष्ण को 'वृन्दावन नागर' कहा है, वैसे ही उन्होंने श्रीचैतन्य-महाप्रभु को 'नदिया नागर' स्वीकार किया है। श्रीचैतन्य स्वयं श्रीकृष्ण हैं, उन्होंने स्व-प्रिया श्रीराधा के हृदय में अपने प्रति उठने वाले दिव्य भावों का रसास्वादन प्राप्त करने के लिये ही श्रीराधा की उज्वल कान्ति पायी थी, इसीलिये उन्हें—"अन्तः कृष्णः बहि गौरिः" कहा जाता है। श्रीमद्भागवत में इस अवतार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। प्रत्येक युग के अवतार का वर्णन करने के पश्चात्--'कला वपि यथा शृणु'--कलियुग के अवतार को भी सुनो, ऐसा कहने के पश्चात् ही यह कहा गया है :-

कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र पार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्त्तन प्रायैर्यजन्तीह सुमेधसः ।।
(११-५-३२)

अर्थात् मुख से श्रीकृष्ण नाम का वर्णन करने वाले तथा कान्ति से अकृष्ण—गौर वर्ण अपने पार्षदों से युक्त प्रभु को भक्तजन संकीर्त्तन रूप यज्ञ के द्वारा पूजन करते हैं। इसके पूर्व श्रीकृष्ण अवतार का वर्णन—"**द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः। श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरूप लक्षितः**" में स्पष्टरूप से हो चुका है।

गौड़ीय सम्प्रदाय के एक मुख्य आचार्य श्रीरूप गोस्वामी ने श्रीचैतन्य महाप्रभु को राधाभावद्युति सुवलित कह कर प्रणाम किया है :—

चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तम् ।
राधाभाव द्युति सुवलितं नौमि कृष्ण स्वरूपम् ।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के अवतार-प्रतिपादक शत-शत प्रमाणों को यहाँ उद्धृत कर ग्रन्थ के कलेवर को बढ़ाना आवश्यक नहीं, क्योंकि महाप्रभु का अवतार शास्त्र सम्मत एवं जनसाधारण में भी सर्वविदित है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु का प्राकट्य स १४८५ में हुआ था। उनका जन्म का नाम विश्वम्भर था किन्तु सूति का गृह नीम के नीचे होने के कारण स्त्रियों ने निमाई नाम रख लिया। श्रीकृष्ण की भांति निमाई भी बड़े चंचल एवं नटखट थे, जितना उनमें चांचल्य था, उससे अधिक कहीं प्रतिभा भी थी, अल्पकाल में ही वे सकल शास्त्र निष्णात हो चुके थे। विद्वत् समाज उनका लोहा मानता था, किन्तु विद्याभिमान उन्हें छू नहीं गया था, वे नम्र-विनम्र स्वभाव के थे, उनके हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम का सागर उमड़ता रहता था, श्रीनिमाई जब अध्यापक हुए तो छात्रों को श्रीकृष्ण नाम और प्रेम का ही उपदेश देते थे, उनकी आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती गई—श्रीकृष्ण-प्रेम का पागलपन भी सवार होता गया। पिता श्रीजगन्नाथ मिश्र का पहले ही देहावसान हो चुका था। माता शचीदेवी इकलौते पुत्र की प्रभु-प्रेम की गंभीर दशाओं को देख-देखकर चिन्तित रहती थी। किन्तु श्रीमहाप्रभु की प्रेमदशा दिन-दिन बढ़ती ही जा रही थी। घर-द्वार गली-गिरारे, पाठशाला, गंगातट, छात्रों के बीच या सभा के मध्य वे जटिल से जटिल प्रश्नों का समाधान तो करते परन्तु समस्त को श्रीकृष्ण परक और श्रीकृष्णनाममय ही सिद्ध करते थे। उसी बीच उनका श्रीकेशव काश्मीरी भट्ट से शास्त्रार्थ हुआ। श्रीकेशव काश्मीरी भट्ट, काश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान थे, उन्होंने अपनी विद्वत्ता से अनेकों महारथियों को परास्त किया था, वे भारत विजय करने के लिये ही देश भ्रमण करने निकले थे, किन्तु नवद्वीप में श्रीमहाप्रभु के मुख से विचित्र शास्त्रीय व्याख्याओं को सुनकर दिग्विजयी पंडित श्रीकेशव काश्मीरी भट्ट नतमस्तक होकर महाप्रभु के चरणों में झुक गये और वैष्णव धर्म की शिक्षा-दीक्षा ग्रहण कर प्रचार-प्रसार में लग गये।

श्रीमहाप्रभु ने १८ वर्ष की आयु में ही गृह त्याग कर दिया था, गृह त्याग के पूर्व ही उनका सम्बन्ध महाभाग श्रीविष्णु-प्रिया से हुआ था और एक दिन उन्हें

सोती हुई छोड़कर चले गये थे। श्रीमहाप्रभु ने गयाधाम में पितृ तर्पण किया, वहीं उन्होंने श्रीमाध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के आचार्य श्रीईश्वरपुरी से गौड़ीय सम्प्रदाय की मंत्र दीक्षा प्राप्त की तथा सन्यास भी ले लिया।

श्रीईश्वरपुरी जी माध्वगौड़ीय वैष्णव सन्यासी थे और श्रीयतिराज श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी के शिष्य थे। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी दाक्षिणात्य थे,ये अद्वितीय विद्वान थे, इन्होंने आन्ध्र प्रदेश स्थित कन्नण प्रान्तीय उडुपीधाम में श्रीमाध्वाचार्यपीठ पर तत्कालीन पीठाधीश आचार्य से दीक्षा एवं संन्यास ग्रहण किया था। उडुपी दक्षिण प्रदेश में समुद्र तट पर बहुत ही रमणीय स्थान है, समस्त माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदायानुयायी वैष्णव मात्र की मूल गद्दी उडुपी कही जाती है। बड़ा विशाल वैभव है, श्रीमाध्वाचार्य की आठ गद्दियां यहाँ स्थापित हैं, मुख्य मन्दिर में नृत्यगोपाल की अद्भुत मूर्ति की दिव्य झांकी का दर्शन है, पूजा की पद्धति दर्शनीय होती है। श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनका वर्तमान विस्तृत सम्प्रदाय-समुदाय उडुपी कृष्ण के श्रीमाध्वाचार्य परम्परा से संबंधित है, यद्यपि तात्विक विवेचनों में श्रीमन्महाप्रभु और श्रीमाध्वाचार्य में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है, उपासना पद्धति में भी देश काल और शास्त्रीय पद्धतियों के आचरण में भेद है—परन्तु मूल मन्त्र दीक्षा तथा भावनागत रस चिन्तन की पद्धति में श्रीराधाकृष्ण की दिव्यलीलाओं के कथनोपकथन में या व्रजरसमाधुरी के भाव, विभाव,अनुभाव,राग-अनुरागों की शैली में कोई अन्तर नहीं है। श्रीमाध्वसम्प्रदाय के कई आचार्यों ने व्रजरस माधुरी का संस्कृत पद्यों में बड़ा ही रोचक वर्णन किया है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की प्रसिद्ध दक्षिण यात्रा के समय अनेक माध्व सम्प्रदायानुयायी वैष्णवों से भेट हुई है, जिनके साथ वार्त्ता या सत्सङ्ग आदि में श्रीकृष्ण लीला या व्रजरस की भरपूर चर्चा मिलती है। उनमें से एक प्रमुख विद्वान श्रीरायरामानन्द के साथ हुई महाप्रभुकी भेट का विशेष वर्णन मिलता है,जिसमें अनेकों प्रश्न और उत्तर हुए है। रायरामानन्द के प्रत्येक उत्तर के बारे में श्रीमहाप्रभु का एक ही उत्तर होता है—**"एहो बाह्य ऐहो बाह्य"** यह भी बाह्य है,यह सब बाह्य है, इससे और आगे कुछ हो तो कहो। तब रायरामानन्द क्रमशः कृष्णार्पण, शरणागति, प्रेमभक्ति, फिर भावानुरूप दास्य, सख्य, वात्सल्य, कान्ताप्रेम कहकर चुप हो जाते हैं। किन्तु महाप्रभु फिर इसके आगे और पूछते हैं, तब तो रायरामानन्द को आश्चर्य होता है कि व्रजगोपियों के अनुसार कान्ताप्रेम से भी आगे पूछने वाला यह कोई साधारण पुरुष नहीं है, तब वे अन्तर्दृष्टि से प्रभु को पहचान लेते हैं, इसके पश्चात् ही आगे का वर्णन करते हैं। वर्णन देखिये :—

एक साध्यावधि सुनिश्चय कृपा करि कह यदि आगे किछु हय।
इहार आगे पूछे हेत जेने एतो दिन नाहि जानि आछये भुवने॥
इहार मध्ये राधार प्रेम साध्य शिरोमणि याहार महिमा सर्व शास्त्रेते वखानि॥

रायरामनन्द ने कहा—महाप्रभु ! कान्ताप्रेम के आगे तो बस श्रीराधा प्रेम ही

परम-चरम साध्य है, उसके आगे फिर कुछ नहीं है। यह सुनते ही श्रीमहाप्रभु गद्गद हो गये। श्रीराधाभावाविष्ट होकर नेत्रों से अश्रुओं की पिचकारी छूटने लगी, शरीर में अष्ट सात्विक विकारों का उदय हो गया, बड़ी देर तक महाप्रभु मूर्छित पड़े रहे। श्रीरायरामान्द और भक्तों ने श्रीकृष्ण के मधुर नामों का कीर्त्तन कर उन्हें प्रबोध कराया।

इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि श्रीमहाप्रभु और उनके छः गोस्वामियों ने जिस अद्भुत ब्रजरसमाधुरी को प्रस्तुत किया है,वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्य महानुभावों ने श्रीराधामाधव की शृङ्गार लीलात्मक जिस प्रेम-माधुरी का सर्वाधिक प्रोज्वल वर्णन किया है—वह निराधार नहीं है। अन्य सम्प्रदायाचार्यों ने जहाँ लीला वर्णन में या रस विवेचन में स्वानुभूति को प्रधान प्रश्रय दिया है, वहाँ गौड़ीय सम्प्रदायाचार्यों ने स्वानुभव को भी शास्त्र के आधार पर प्रतिष्ठित किया है, ताकि उसे कोई स्वमत या निजमत कह कर सम्बोधित न कर सके, गौड़ीय सम्प्रदाय के दो महान ग्रन्थ "**भक्तिरसामृत सिन्धु और उज्ज्वल नीलमणि**" इतने जबरदस्त और सशक्त ग्रन्थ हैं कि आज भारत ही नहीं विश्व का रस-शास्त्रज्ञ भी उनके आगे नत मस्तक है। श्री रूपगोस्वामी की यह महान देन चिरकाल तक रसिकों का मार्ग दर्शन कराने में प्रकाश स्तम्भ का काम करती रहेगी।

श्रीमहाप्रभु का दिव्य जीवन श्रीराधाकृष्ण की अलौकिक प्रेमधारा से ओत-प्रोत है, राधाभाव सुवलित महाप्रभु श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति के लिये अहर्निश छटपटाते रहते हैं। भावावेश में कभी मिलन के अद्भुत सुख की अनुभूति कभी वियोगाग्नि में दहकते रहना ही उनकी जीवनचर्या है। श्रीकृष्ण नाम में उनकी प्रियता अन्यतम है, 'कृष्ण' ये दो अक्षर वाला नाम—क्योंकि उनके प्राणप्रेष्ठ श्रीकृष्ण का नाम है, इसलिये उसके उच्चारण में इतनी रुचि है कि शयन अवस्था में भी जिह्वा 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करती रहती है। कलिहत जीवों को नाम दान देकर श्रीमहाप्रभु ने बड़े-बड़े पातकियों को प्रभु के शरणापन्न किया था। उनका अवतार मुख्यतः कलियुग में नाम संकीर्त्तन के द्वारा अन्तःकरण को निष्पाप बनाकर हृदय में प्रेम की धारा प्रवाहित करने को ही हुआ था।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की रसमयी उपासना का यह छाप वैष्णव समाज में सर्वत्र दिखाई देती है। सोलहवीं शती के ब्रजरस-उपासक वैष्णवाचार्य कवियों की वाणियों में श्रीराधाकृष्ण की दिव्य लीलाओं का जो चिन्तन हुआ है, वह श्रीचैतन्यदेव की ही देन है। यदि श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव का अवतरण न हुआ होता तो ब्रजभाषा का कृष्ण काव्य राधाकृष्ण की दिव्य रसमयी लीलाओं से वंचित ही रह जाता।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की रस-उपासना की एक विशेषता और है, उनका सम्पूर्ण प्रेमनगर शास्त्रीय प्रमाणों की आधार शिला पर प्रतिष्ठित है, वे मुख्यत. श्रीमद्भागवत

ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में अत्यधिक श्रद्धा और विश्वास रखते हैं, श्रीमहाप्रभु के अनुयायी षट् गोस्वामी श्रीरूप, सनातन, जीव, गोपाल भट्ट प्रभृति बिना शास्त्र-प्रमाण के एक कदम भी नहीं चलते, इन महानुभावों ने शास्त्र-मर्यादा को जितना संरक्षण दिया है—उतना स्यात् ही किसी अन्य रस-उपासक वैष्णवाचार्य ने दिया हो। इस सम्प्रदाय की उपासना के सम्बन्ध में यह श्लोक बहुत ही प्रचलित है :—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं,
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् वैष्णवानां धनं,
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममत्नं ज्ञानं परं गीयते॥

यहाँ आराधना का लक्ष व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं, उपासना की पद्धति व्रज-गोपियों के अनुसार स्वीकार की गई है, वैष्णवों का परम धन श्रीमद्भागवत ही एकमात्र प्रमाण-शास्त्र है। इसी आधार पर गौड़ीय सम्प्रदाय में रस-चिन्तन की धारा को दो रूप में अर्थात् स्वकीया एवं परकीया भावों में विन्यस्त किया गया है।

कुछ लोग 'परकीया भाव से चौंकते हैं, चौंकने वाले या तो शास्त्रीय रस-तत्व की असमोर्ध्व प्रणाली से अनभिज्ञ हैं अथवा उनकी परम्पराओं में उसकी अभिव्यक्ति नहीं है। उन्हें यह पता नहीं है कि रस की परम-चरम सीमा परकीयात्व में ही परिनिष्ठित होती है, स्वकीया तो स्वकीया है ही, यहाँ प्रतिक्षण-पतिपल रस की परि-वृद्धि होना स्वाभाविक नहीं है, वस्तु की अप्राप्ति में ही रसोउल्लास की तीव्रता स्वाभाविक है।यहाँ अप्राप्ति दूरगामी नहीं होती,यह एक भावना है और केवल भावना। जो रस वृद्धि के लिये ही आरोपित की जाती है। सिद्धान्ततः परकीयात्व स्थायी नहीं है, एक आरोपित भाव मात्र है। एक दूसरे को पर-समझ कर जब स्नेह सूत्रों में बाँधते हैं,रस की मधुर पीड़ा का अनुभव तभी होता है।

प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण नित्य एक हैं, अभिन्न हैं, वे रसानुभूति के लिये ही दो रूपों में विभक्त हैं, तो रसानुभूति की चरम-सीमा परकीयात्व ही है। दोनों परस्पर एक दूसरे को भूल जाते हैं, भूलकर पुनः अनुरक्त होते हैं, इस अनुराग में अनेक रुकावटें आती हैं, तभी इसका पोषण होता है। श्रीमद्भागवत आदि इस पर-कीया रस के पोषक प्रमाण ग्रन्थ हैं। जो लोग वाणी ग्रन्थों के आधार पर एक ऐसे निकुञ्ज के नित्य-विहार की कल्पना करते हैं—जहाँ एक पल को भी अलगाव नहीं है, और उस नित्य निकुञ्जविहारी श्रीकृष्ण को वृन्दावन विहारी कृष्ण से पृथक तथा वृन्दावन विहारी कृष्ण को भी व्रजविहारी कृष्ण से पृथक कल्पना कर तीन-तीन कृष्ण की कल्पना कर डालते हैं—वे स्वतन्त्र कल्पित विचारधारा के पोषक ही कहे जा सकते हैं, अन्यथा श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में कहीं भी निकुञ्जविहारी और वृन्दावन विहारी की पृथक कल्पना नहीं हैं। एक बात और ? यदि युगलरूप का सदा नित्य-विहार ही सिद्ध है तो सभी वैष्णवाचार्यों ने-रसिकों ने अपनी वाणियों में विभिन्न क्रम लीलाओं का गायन क्यों किया है ? यदि उन रस सिद्ध पुरुषों ने इन दिव्य लीलाओं

का साक्षात् दर्शन किया है तो ये लीलायें भी नित्य हैं उसी तरह नित्य हैं जैसे उनका निकुञ्ज का नित्य-विहार नित्य हैं। वस्तुतः तो यहाँ किसी प्रकार का भेद लाना ही अपराध है, शास्त्र-विरुद्ध तो है ही, तर्क विरुद्ध भी है। व्रज, वृन्दावन और निकुञ्जों में पृथक्-पृथक् कल्पना करना एक मात्र कल्पित ही है। वैसे ही जैसे एक दूसरे लोग यह भी कहते हैं कि गोकुल का कृष्ण, द्वारिका का कृष्ण और महाभारत का कृष्ण पृथक्-पृथक् थे। इनके कहने के तो कुछ आधार भी हो सकते हैं। परन्तु वर्तमान में जो रस व्याख्यायें की जा रही हैं, जिनके द्वारा व्रजमण्डल में ही अनेकों कृष्ण की कल्पना हो रही हैं—उसका तो कोई आधार भी प्रतीत नहीं होता। भावराज्य की बात अलग है, कोई भावुक अपनी भावना को किसी भी रूप में व्यक्त करने को स्वतंत्र है।

यहाँ गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्यों ने प्रिया-प्रियतम के विहार को स्वकीया-परकीया दोनों रूपों में स्वीकार किया है। स्वकीया वास्तविकता है और परकीया एक आरोपित भावमात्र है। महाभावस्वरूपा राधा ठकुरानी ही यहाँ समस्त लीला की केन्द्रविन्दु हैं। स्वयं भगवान कृष्ण ने ही अपनी ह्लादिनी शक्ति को ही प्रेम-क्रीड़ा के लिये राधारूप में प्रकट किया है। व्रज में कृष्ण-प्रेयसी गोपियां अनन्त हैं, उनकी कई कोटि हैं, पर श्रीराधा उनमें मुख्य हैं, प्रेम रस की पराकाष्ठा, समर्पण का भाव, केवल कृष्ण प्रीत्यर्थ ही समस्त इच्छायें जाग्रत हैं। श्रीचैतन्य चरितामृत में कहा है :—

किं वा प्रेम रसमय कृष्णेर स्वरूप। तार शक्ति तार सह हय एक रुप॥
कृष्ण वाच्छा पूर्तिरुप करे आराधने। अतएव 'राधिका' नाम पुराणे वखाने॥
यहाभावस्वरुपा श्रीराधा ठकुराणी। सर्वगुण खानि कृष्णकांताशिरोमणि॥
सेई गोपीगण मध्ये उत्तमा राधिका। रुपे गुणे सौभाग्ये प्रेमे सर्वाधिका॥

दोनों एक रूप,, शक्ति-शक्तिमान, अनुपम युगल प्रेम-प्रतिमा, लीलारस-सिन्धु के दो मोती ये दो रूप केवल लीलारस का आस्वादन करने हेतु ही विभक्त प्रतीत होते हैं, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी के चैतन्यचरितामृत में देखिये :—

राधापूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। दुइ वस्तु भेद नहि शास्त्र परमाण॥
मृगमद तार गंध पैछे अविच्छेद। अग्नि ज्वाला ते यैछे कभु नहे भेद॥
राधाकृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरुप। लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रुप॥

श्रीराधा-प्रेम की महिमा अद्भुत है, स्वयं श्रीकृष्ण भी श्रीराधा के कोटि गुणित-प्रेम पर आश्चर्य चकित हैं, श्रीमुख से स्वयं कहते हैं :—

कृष्ण कहे आमि हइ रसेर निधान।
पूर्णानन्दमय आमि चिन्मय पूर्ण तत्व।
राधिकार प्रेमे आमा कराय उन्मत्त॥
ना जानि राधार प्रेमे आछे कत वल।
जे वले आमारे करे सर्वदा विह्वल॥

राधिकार प्रेमगुरु आमि शिष्य नट ।
सदा आमा नाना नृत्ये नाचाय उद्भट ॥
निज प्रेम स्वादे मोर हय जे आह्लाद ।
ताहा हैते कोटि गुण राधा प्रेमास्वाद ॥

प्रेम रस के माधुर्य का रसास्वादन स्वयं विषय नहीं कर पाता, श्रीकृष्ण प्रेम-रस के माधुर्य की पूर्ण अभिव्यक्ति भी श्रीराधा के हृदय रूप दर्पण में ही प्रतिबिम्बित होती है ।

श्रीकृष्णका सौन्दर्य माधुर्य लावण्य—श्रीराधा प्रेमसागर में ही उद्भासित होता है श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के अवतार का भी यही मुख्य हेतु है । क्योंकि श्रीकृष्ण अपनी ही रस माधुरी के पिपासु बने रहते हैं, अनन्त विचित्र प्रेम-घन-राशि श्रीराधा के साथ लीलारस का आस्वादन करके भी श्रीकृष्ण अतृप्त ही रह गये—तब उन्हें राधा भाव और कान्ति लेकर श्रीगौर रूप में अवतरित होना पड़ा । श्रीराधा-हृदय के वियोगानन्द की अनुभूति के लिये श्रीकृष्ण को राधा का विरह-संतप्त हृदय धारण करना ही पड़ेगा । नीचे के पयारों में इन्हीं भावों को व्यक्त किया गया है, यहाँ आश्रय को विषय और विषय को आश्रय करके ही श्रीकृष्ण को प्रेमानुभूति हुई है । इस दिव्य प्रेम का आश्रय श्रीराधा हैं और विषय हैं श्रीकृष्ण । इसको विपरीत करके देखिये :—

सेइ प्रेमार श्रीराधिका परम आश्रय ।
सेइ प्रेमार आमि हइ केवल विषय ॥
विषय जातीय सुख आमार आस्वाद ।
आमा हैते कोटि गुण आश्रयेर आह्लाद ॥
आश्रय जातीय सुख पाइते मन धाय ।
यत्ने आस्विादिते नारि कि करि उपाय ॥
कभू यदि एइ प्रेमार हइये आश्रय ।
तबे एइ प्रेमानन्देर अनुभव हय ॥

× × ×

अद्भुत अनन्त पूर्ण मोर मधुरिमा ।
त्रिजगते इहार केहो नाहि पाय सीमा ॥
एइ प्रेम द्वारे नित्य राधिका एकलि ।
आमार माधुर्यामृत आस्वादे सकलि ॥
यद्यपि निर्मल राधार सत्प्रेम दर्पण ।
तथापि स्वच्छता तार वाढ़े क्षण-क्षण ॥
आमार माधुर्येर नाहि वाढ़िते अवकासे ।
ऐ—दर्पणेर आगे नव-नव रूपे भासे ॥

मन्माधुर्य राधाप्रेम दोहे होड़ करि।
क्षणे-क्षणे वाढ़े दोहे केहो नाहि हारि॥
आमार माधुर्य नित्य नव नव हय।
स्व स्व प्रेम अनुरूप भक्ते आस्वादय॥
दर्पणाद्ये देखि यदि आपन माधुरी।
आस्वादिते लोभ हय आस्वादिते नारी॥
विचार करिये यदि आस्वाद-उपाय।
राधिकास्वरूप हइते तवे मन धाय॥

श्रीराधा के रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श सम्बन्धी जितनी भी चेष्टायें हैं, श्रीकृष्ण कहते हैं, वे सभी मेरे मन को द्विगुणित होकर हरण कर रहे हैं :—

मोर रूपे आप्यायित करे त्रिभुवन। राधार दर्शने मोर जुड़ाय नयन॥
मोर बंशी गीते आकर्षये त्रिभुवन। राधार वचन हरे आमार श्रवण॥
यद्यपि आमार गन्धे जगत सुगन्ध। मोर चित्त घ्राण हरे राधा अंग-गंध॥
यद्यपि आमार रसे जगत सुरस। राधार अधर रसे आमा करे वस॥
यद्यपि आमार स्पर्श कोटीनुशीतल। राधिकार स्पर्शे आमा करे सुशीतल॥

इस प्रकार व्रजरस माधुरी में श्रीचैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य महानुभावों ने श्रीराधा को ही श्रीकृष्ण की हृदयाह्लादिनि शक्तिभूता, रससार घनीभूता, नित्य प्रेमास्पृदा एवं माधुर्य की चरम सीमा तथा स्फूर्ति स्वीकार किया है। जहाँ यह नित्य लीला होती है—यह अप्राकृत वृन्दावन है, यहाँ का युगल विहार श्रीश्यामाश्याम की दिव्यातिदिव्य क्रीड़ा ही भक्तों का परम आराध्य है। नित्य वृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण नित्य किशोर एवं नित्य किशोरी के रूप में लीला विलास करते हैं।

गौड़ीय सम्प्रदाय में माधुर्यभक्ति—

मनसा वाचा कर्मणा—श्रीकृष्ण को ही परम इष्ट, हृदय का देवता मानकर आराधना करना ही भक्ति है। अन्य समस्त की अभिलाषा का परित्यागकर ज्ञान कर्मादि से अनावृत, उन्हीं के अनुकूल समस्त भावों से—श्रीकृष्ण का अनुशीलन ही भक्ति है :—

अन्याभिलाषिता शून्यं, ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

—भक्तिरसामृतसिधु

यह भक्ति दो प्रकर की है—वैधी और रागानुगा। वैधी में विधि प्रधान है। रागानुगाराग केन्द्रित है। वैधी भक्ति मंत्र-तंत्रादि षोडषोपचार से देवाधिदेव पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की अर्चा—पूजा पद्धति है। रागानुगाभक्ति उसके सौंदर्य माधुर्य लावण्य-उदधि की कान्ति किरणों पर मुग्धभाव से न्यौछावर हो जाना है। वैधी में श्रद्धा,

भय, संभ्रम, बंधन, ऐश्वर्य, अपराध आदि का बोध रहना आवश्यक है। रागानुगा में धर्म, कर्म, विधि-निषेध सभी छूट जाते हैं। वैधी में जहाँ वह प्रभु, रक्षक-पुरुषोत्तम है, रागानुगा में--वही वत्स, सखा या कान्त होजाते हैं। श्रीकृष्ण इस रागमयी भक्ति के सर्वश्रेष्ठ परमाराध्य देवता हैं, इस मार्ग के अनुयायी भी वे ही श्रेष्ठ भक्त हैं जो चितचोर यशोदानन्दन गोपीजन वल्लभ, श्रीराधा प्राणप्रेष्ठ-श्रीकृष्ण की लीला का अहर्निश चिन्तन करते रहते हैं, वस्तुतः रागानुगा भक्ति ही मधुर भाव की मूलाधार है। जैसे विषयी पुरुषों का विषयों के प्रति आकर्षण होता है, उसी प्रकार भक्त का जब भगवान् के प्रति आकर्षण होता है, तब उसे 'राग' कहते हैं :—

"तत्रविषयिणः स्वाभाविको विषय संसर्गेच्छामयः प्रेमा,
रागः यथा चक्षुरादिनां सौन्दर्यादौ तादृश एवात्र भक्तस्य,
श्रीभगवत्यपि राग इत्युच्यते"-श्रीजीवगोस्वामी-भक्तिसंदर्भ ॥

यह राग जहां प्रबल होता है, वहीं रागात्मिका-भावरूपा-साध्याभक्ति की अभिव्यक्ति होती है। व्रजवासी जनों में इसका पूर्णदर्शन होता है, रागात्मिका का अनुसरण करने के कारण इसे 'रागानुगा' भी कहते हैं। रागानुगा के भी तीन भेद हैं—१—प्रेमाभक्ति, २—पराभक्ति और ३—प्रौढ़ा भक्ति।

(१) प्रेमाभक्ति—जब हृदय में प्रेमास्पद प्रियतम के लिये भावसागर उमड़ने लगे, तब उसे प्रेमाभक्ति कहते हैं।

(२) पराभक्ति--अपने इष्ट के साथ संबंध विशेष को लेकर हृदय जब किसी भाव बंधन में दृढ़तापूर्वक बंध जाता है और उसे भावमयी परिपक्वता प्राप्त होजाती है, तब उसे स्थिर रति वाली पराभक्ति कहते हैं।

(३) प्रौढ़ाभक्ति—रसराज महोदधि प्राणप्रिय-श्रीकृष्ण के मधुराति-मधुर स्वरूप का रसपान करते-करते संभावित विरह और तज्जन्य तीव्र विरह ज्वाला के दहकने पर अन्तर्वृत्तियों का पूर्ण निरोध एवं प्रेष्ठ के साथ ऐक्य या तदाकार हो जाना ही प्रौढ़ा भक्ति है। इसे ही मधुर रस भी कहते हैं। मधुर या शृङ्गार रस या कान्ता भाव अथवा मञ्जरी भाव प्रौढ़ा के अन्तर्गत ही आते हैं।

भाव और प्रेम दोनों साध्यभूत हैं। भावभक्ति प्रारम्भिक दशा है तो, प्रेमाभक्ति उसकी चरम दशा है। प्रगाढ़ और प्रबल भाव का नाम ही प्रेम है। अन्तः करण को अत्यन्त द्रवीभूत करादेने वाला अत्यधिक ममता युक्त सान्द्रभाव ही प्रेम कहलाता है। प्रेमोदय का क्रम इस प्रकार होता है—श्रद्धा, साधुसङ्ग, भजनक्रिया, अनर्थ निवृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव और प्रेम।

प्रेम की अन्तर्दशा में रति अर्थात् भाव ही धीरे-धीरे दृढ़ होकर प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव बन जाते हैं, इनमें उत्तरोत्तर मधुरिमा बढ़ती ही जाती है। चैतन्यचरितामृत में इस मधुरिमा का सुन्दर वर्णन इस प्रकार हुआ है :—

प्रेम क्रमे वाड़ि हय स्नेह मान प्रणय।
राग अनुराग भाव महा भाव हय॥
यैछे बीज इक्षुरस गुड़ खण्डसार।
सर्करा सिता मिछरि शुद्ध मिछरि आर॥
इहा तैछे क्रमे निर्मल क्रमे वाड़े स्वाद।
रति प्रेमादि तैछे वाड़ये आस्वाद॥

जिनके हृदय में भाव या प्रेम का अङ्कुर उदय हो जाता है, उनके अनुभाव के ये लक्षण स्वभावतः प्रकट होजाते हैं :—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशावन्धः समुत्कण्ठा नाम गाने सदा रुचिः॥
आसक्तिस्तद् गुणाख्याने प्रीतिस्तद् वसतिस्थले।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जात भावाङ्कुरे जने॥

जिनके चित्त में प्रेम का अङ्कुर उत्पन्न होगया है—उन महापुरुषों में क्षान्ति-क्षोभ शून्यता। अव्यर्थ कालता—प्रिय की चर्चा छोड़कर व्यर्थ समय न खोना। विराग-मोह राहित्य। मानशून्यता और आशावन्ध—भगवत् कृपा की आशा। समुत्कण्ठा, रुचि, लीलास्थल-श्रीवृन्दावन धाम में प्रीति आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

मधुरभाव अर्थात् शृङ्गार रस के दो स्तम्भ हैं—संयोग और वियोग। बिना संयोग के पूर्व-वियोग— विच्छेद की सुखानुभूति नहीं होती और बिना वियोग के संयोग अथवा मिलन सुख की पराकाष्ठा का अनुभव नहीं होता, अतः रस वृद्धि के लिये ही दोनों आवश्यक हैं, अतएव संयोग वियोग दोनों ही मधुर रस के अङ्गभूत भूषण हैं, संयोग और वियोग सख्य, वात्सल्य आदि रसों में भी अनेक भेदों से होते हैं। मधुर भाव जब व्रजगोपियों में परिलक्षित होता है तो इसको 'अधिरूढ़ मधुर भाव' कहते हैं। यही भाव रुकमिणी सत्यभामा आदि में मात्र रूढ़मधुर भाव के नाम से कहा जाता है।

"रूढ़-अधिरूढ़ भाव केवल - मधुरे।
महिषीगणेर रूढ़ अधिरूढ़ गोपिका निकरे॥"

गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्य चरण श्रीरूपगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृत सिन्धु' में वियोग की दशा के दश भेद बताये हैं—"ताप, कृशता, जागरण, आलम्ब (शून्यता) अधृति, जड़ता, व्याधि, उन्माद, मूर्च्छा और मृति।" प्रिय की वियोग दशा में ये लक्षण उत्पन्न होते रहते हैं।

मधुरारति को भी तीन प्रकार का बताया गया है—साधारणी, समञ्जसा, और समर्था।

साधारणी रति—में पहले स्वसुख की कामना होती है, पश्चात् प्रिय को सुखी करने की इच्छा बलवती हो उठती है। यहाँ रति की दशा अत्यन्त गाढ़

नहीं होती, श्रीकृष्ण दर्शन से ही आलिङ्गन या सम्भोग की इच्छा उत्पन्न होती है—जैसे कुब्जा में श्रीकृष्ण के प्रति साधारणी रति है।

समञ्जसारति—प्रिय के गुण या लीला श्रवण से उत्पन्न होती है, इसमें प्रिय की सहधर्मिणी-पत्नित्व का स्वाभिमान जागृत होता है, कभी-कभी सम्भोग की इच्छा भी होती है, परन्तु पत्नीरूप से श्रीकृष्ण की सेवा करके उन्हें सुख पहुंचाने की इच्छा ही बलवती होती है—इसे समञ्जसा रति कहते है।

समर्थारति—जिस रति में श्रीकृष्ण का सुख ही एक मात्र लक्ष रहता है, जहाँ स्वसुख की लेशमात्र भी गंध नहीं होती, 'तत्सुखे सुखित्वम्' की भावना ही जहाँ एक मात्र बलवती होती है। अङ्गाङ्गी सम्बन्ध या स्व-सुख की कल्पना का जहां स्मरण भी उदय नहीं होता—उसे समर्था रति कहते हैं। समर्था-रति महाभाव की सीमा तक परिवर्द्धिक होती रहती है। श्रीराधा जी और गोपिकागणों में समर्था रति का उदय होता है। उक्त तीन प्रकार की रति में समर्था-रति ही प्रधाना-मुख्य है।

पहले बता चुके हैं कि हृदय की मसृणता ही प्रेम है। प्रेम के दीपक से द्रवित चित्त में स्नेह उत्पन्न होता है, स्नेह सिक्त चित्त में माधुर्य के अतिरेक से जब मंचलन या ऐंठन या गाँठ पड़ जाती है तब मान का एक पाषाण जैसा उठ खड़ा होता है। वह मान जब हृदय में प्रिय के प्रति अडिग विश्वास पैदा कर देता है, तब उसे प्रणय कहते हैं, प्रणयोत्कर्ष में दुःख भी सुख प्रतीत होता है—यही राग है। रागोत्पत्ति से चित्त में नव-नव प्रेमानुभूतियों का प्रादुर्भाव होता है—यही अनुराग है। अनुराग वृद्धि को प्राप्त होकर जब स्व-संवेद्यता को प्राप्त होता है, तब इसे भाव दशा कहते हैं। यह क्रमशः प्रेमानुभूति, कृष्णानुभूति और उभयानुभूति से तीन प्रकार का है। यह भाव व्रजदेवियों में ही संभव है, वही इसे महा भाव की संज्ञा प्राप्त है। यह भी रूढ़ और अधिरूढ़ दो नामों से ख्यात है, रूढ़भाव द्वारिकादि में पट्ट-महिषियों में और अधिरूढ़ भाव व्रजाङ्गनाओं में प्रसिद्ध है। यह अधिरूढ़ महाभाव भी 'मादन' और 'मोदन' भेदों से दो प्रकार का है :—

अधिरूढ़ महाभाव दुइत प्रकार।
सम्भोगे 'मादन' विरहे 'मोदन' नाम तार॥
मादनेर चुम्बनादि हय अनन्त विभेद।
उदघूर्णा चित्रजल्प मोदनेर दुइ भेद॥
चित्र जल्प दश अङ्ग प्रजल्पादि नाम।
भ्रमर गीता दशमश्लोक ताहार प्रमाण॥

(१) मादन—अधिरूढ़ महाभाव की वह दशा है—जिससे रसोन्मत्तता उत्पन्न होती है। श्रीकृष्ण-मिलन से जितने प्रकार का आनन्द-वैचित्र्य उत्पन्न हो सकता है—मादन से वह सब उत्पन्न होता है। आचार्य चरण श्रीरूप गोस्वामीजी के अनुसार 'मादन' उस स्थिति का नाम है, जिससे श्रीकृष्ण भी क्षुभित हो जाते हैं और इस

पादन महादशा की एकमात्र अधिकारिणी कान्ता शिरोमणि श्रीराधा ही हैं, इसे राधा-महाभाव भी कहते हैं। यह ह्लादिनी का चरम सुविलास है। इसीलिये श्रीराधा को 'कान्ताशिरोमणि' कहा जाता है, आचार्य चरण श्रीरूप गोस्वामीजी ने इस 'मादनाख्य' महाभाव के ठहरने के एकमात्र स्थान श्रीराधा को ही बताया हैं, श्रीराधाजी को छोड़ कर इस महाभाव की अन्यत्र कहीं भी अभिव्यक्ति नहीं होती, यह श्रीराधाजी की निजी सम्पत्ति है :—

सर्वभावोद्गमोल्लासी, मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनी सारो, राधायामेव यः सदा॥

(२)—मोदन या मोहन—मोदन हर्षवाचक है, आनन्दातिरेक में यह हृदय में अत्यधिक हर्षोल्लास पैदा करता है—उस समय शरीर के समस्त अङ्ग फूल उठते हैं, हर्ष की मादकता का नशा जैसा शरीर में व्याप्त हो जाता है। श्रीकृष्ण से मिलन की अवस्था में ही यह सम्भव है। किन्तु यही मोदन जब विरहावस्था को प्राप्त कर लेता है, तब इसे 'मोहन' कहा जाता है। मोहन में विरह जनित विवशता में समस्त अष्ट सात्विक-भाव उद्दीप्त हो उठते हैं। इनके उदित होने पर शरीर में—स्तम्भ, कम्प, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय आदि के स्पष्ट लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ये भाव वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाजी में ही प्रकट होते हैं।

'मोहनाख्य महाभाव' के दो भेद—'उद्घूर्णा' और 'चित्रजल्प' हैं। ये दोनों दिव्योन्माद में प्रकट होते हैं।

विरहावस्था में प्रियतम श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति को भुलाकर उनके साथ साक्षात्कार करने की चेष्टा में घोर अन्धकार में कुञ्जाभिसार तथा कुञ्जगृह में शय्या आदि की रचना करना-उद्घूर्णा के कार्य हैं।

प्रिय की विरहावस्था में प्राणप्रिय श्रीकृष्ण के सदृश किसी सुहृद को देखकर गूढ़ क्रोध का उत्पन्न होना तथा भावमय जल्पना करने को चित्र जल्प कहते हैं जैसे उद्धव जी को देखकर श्रीराधा तथा व्रजगोपियों की चित्त जल्पना है। इस चित्र जल्प के दश भेद हैं—१—प्रजल्प, २—परिजल्प, ३—विजल्प, ४—उज्जल्प, ५—संजल्प, ६—अपिजल्प, ७—अभिजल्प, ८—आजल्प, ९—प्रतिजल्प और १०—सुजल्प। इनकी विशेष व्याख्या के लिये पाठकों को 'भक्तिरसामृत सिंधु' आदि गौड़ीय सम्प्रदाय के रस ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

पुनः मादन और मोहन के विषय में एक विहङ्गम दृष्टि और डालनी चाहिये—'मादनाख्य महाभाव का विकास मिलन अवस्था में ही होता है, इसमें विरह का अभाव है। इसमें रति से लेकर महाभाव तक समस्त भाव उल्लासशील होते हैं, राधाजी के अतिरिक्त यह कहीं भी नहीं है, श्रीकृष्ण में इसके द्वारा क्षोभ तो होता है—पर विकास नहीं है। मादन में अत्यन्त ही आनन्दमत्तता है। मादन की और एक विशेषता यह है कि ईर्षा के अयोग्य वस्तु में भी यह प्रबल ईर्षा उत्पन्न करता है। जैसे

वनमाला, अचेतन वस्तु है, उसमें किसी की ईर्षा नहीं बनती, किन्तु श्रीकृष्ण के गले में वनमाला, को देखकर श्रीराधा जी में ईर्षा का उद्रेक हो जाता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के अधरों पर लगी वंशी के प्रति भी उनकी ईर्षा प्रबलरूप धारण कर लेती है।

एक और विशेषता इस मादन महाभाव में है—वह यह है, कि श्रीकृष्ण द्वारा सदा सर्वदा–अहर्निश संभुक्ता स्थिति में वर्त्तमान रहते हुए भी श्रीराधाजी जब कभी श्रीकृष्ण द्वारा अन्य किसी वस्तु के सम्भोग की गंध मात्र भी देख-सुन पाती हैं, तब वे उसके सौभाग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगती हैं। जैसे श्रीकृष्ण-चरण-लिप्त-कुङ्कुम को स्व-स्तनों पर लेपन करने वाली पुलिन्द कन्याओं की श्रीराधा जी स्तुति करने लगती हैं। इस तरह 'मादन' में केवल मिलनानन्द-मत्तता है तो 'मोहन' में केवल विरह-कातरता है।

इस प्रकार गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्य चरणों द्वारा स्थापित या वर्णित व्रज-रस माधुरी की सिद्धान्त-परिपाटी का उल्लेख हुआ है, यह विषय इतना विस्तृत है कि लम्बे समय तक लेखनी चलती रहे—तब भी सीमा तक पहुँचना कठिन है। अतः अब इसके आगे हम गौड़ीय सम्प्रदाय के आधार पर ही 'मादन' और 'मोहन' महाभावात्मक लीलाओं का वर्णन इसी सम्प्रदाय के संस्कृत, हिन्दी और बंगला के कवियों द्वारा गाये गये उनके पद्यों द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

यह बात हम पहले बता चुके हैं कि व्रजरस माधुरी का आस्वादन परकीया भाव की परम-चरम सीमा में है, इस रस का पोषण श्रीमद् भागवतादि पुराणों से लेकर पाली और प्राकृत भाषा के ग्रन्थों तक में सर्वत्र हुआ है। 'गीत गोविन्दकार' श्रीजयदेव गोस्वामी से लेकर श्रीरूपगोस्वामी तक संस्कृत–रचनाओं में परकीया रस की अजस्र-धारा प्रवाहित है। श्रीगीत गोविन्द के रचयिता श्रीजयदेव कवि श्रीमाध्वगौड़ेश्वर या वर्त्तमान में गौड़ीय कहे जाने वाली सम्प्रदाय में दीक्षित माने जाते हैं, इनके वंशज आज भी वृन्दावन में वर्त्तमान में है।

गीत गोविन्द का एकभाव देखिये, श्रीराधा अपनी सखी से कह रही हैं–सखि ! वह प्राणवल्लभ ! कृष्ण ! वह निर्दयी शठ, यदि तेरे साथ नहीं आये तो इसमें तेरा क्या दोष है ? क्योंकि वे तो बहुवल्लभ हैं, उनकी एक प्रिया नहीं है, वे अनेकों के साथ स्वच्छन्द रमण करते हैं, वे वचन देकर भी नहीं आते, वे बिना रोक-टोक अपनी प्रणय लीला में प्रवृत्त हैं, उन्हें कौन हटा सकता है। किन्तु सखि ! अब क्षण भर के विलम्ब में भी उसका चित्त उत्कण्ठार्त्ति के भार से फट जायेगा—तब वह फटा-टूटा मन आप ही उनके समीप पहुँच जायगा—

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयते,
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किन्त्वत्रते दूषणम्।
पश्याद्य प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणैः,
उत्कण्ठार्त्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति॥

—गीत गोविन्द

चारु सम्प्रदाय आश्रम वृन्दावन का

—: गुरुदेव-स्मृति-उपलक्ष में :—

सत्रहवां वार्षिक-महोत्सव

महोदय,

चारु सम्प्रदाय आश्रम का वार्षिक महोत्सव प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी बड़ी धूम-धाम से मनाया जारहा है. उत्सव में श्री भागवत-सप्ताह, अखण्ड नाम संकीर्त्तन, गोस्वामी ग्रन्थों का पाठ, श्री रामायण जी का नवान्ह पारायण और अनेक विद्वानों के भाषण तथा रासलीला एवं नाटक प्रतिदिन होते रहेंगे। बाहर से अनेक कीर्त्तन मंडलियाँ तथा प्रसिद्ध रामायणी महात्मा जन पधार रहे हैं।

उत्सव २२ फरवरी सन् १९५९ रविवार माघ चतुर्दशी से शुरू होकर १ मार्च सन् १९५९ रविवार फाल्गुन कृष्ण सप्तमी तक चलेगा।

प्रतिदिन प्रातः—सामूहिक प्रभाती कीर्त्तन, भागवत मूल पाठ, रामायण नवान्ह गायन आदि होगा।

„ मध्यान्होत्तर—श्री भागवत का अर्थ सहित व्याख्यान।

„ सांयकाल—गोस्वामी ग्रन्थों पर विद्वानों के प्रवचन तथा श्री रामायण जी की कथा। पश्चात् सामूहिक संकीर्त्तन।

„ रात्रि में रासलीला या भक्त नाटक मण्डली का अभिनय।

पहली मार्च रविवार को प्रातः ९ बजे श्री गुरुदेव का चरण पूजन होगा, पूजन में सभी भक्तों को सम्मिलित होना चाहिये।

नोट १—परिस्थिति और समय के अनुसार उत्सव के कार्य क्रम में या समय में परिवर्त्तन कर दिया जायगा।

२—बाहर से आने वाले भक्तों को अपना बिस्तर आदि साथ लाना चाहिये।

निवेदक:—

रामदास शास्त्री

चारु संप्रदाय आश्रम,

[डाक बंगला के पीछे] वृन्दावन

श्रीविजय प्रेस, वृन्दावन

विरहिणी श्रीराधा का रूप श्री जयदेव कवि ने कितनी सजीवता से वर्णन किया है, श्रीराधा की एक सखी श्रीकृष्ण से कहती है—श्रीराधा को अपना महल तुम्हारे विरह में जंगल सा प्रतीत होता है, चारों ओर से घेर कर बैठीं सखियों का समूह उन्हें जाल सा दिखाई दे रहा है, उसकी साँसों से निकलने वाली उष्णता दावाग्नि की लपट का समूह जैसी प्रतीत होती है, हाय ! वह बेचारी राधा, हे श्याम ! तुम्हारे विरह में हरिणी के समान है, जिस पर आक्रमण करता हुआ सिंह के समान कामदेव यमराज जैसा लग रहा है :—

आवासो विपिनायते प्रियसखि मालापि जालायते,
तापोऽपि श्वसितेन दावदहन ज्वाला कलापायते।
साऽपित्वद् विरहेण हन्त हरिणी रूपायते हा कथं,
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्शार्दूल विक्रीड़ितम्॥

—गीत गोविन्द

मैथिल कवियों ने भी क्या खूबी से इस रस का गुणगान किया है, विद्यापति और चण्डीदास तो इस रस-सरोवर में डूबे ही दृष्टिगोचर होते हैं, माधुर्य-रस का पूर्ण पात्र इन रसिकों के ओठों से लगा ही रहता है। देखिये विद्यापति अपने एक पद में क्या कह रहे हैं। एक सखि राधा से कहती है, गोरी ? :—

अम्बरे वदन झपावहु गोरी। राज सुनइछि चान्दक चोरी॥
घरे-घरे पहरी गेल अछ जोहि। अब हि दूषण लागत तोहि॥
सुन-सुन सुन्दरि हित उपदेश। सपनेहु जनु हो विपद कलेश॥
हास सुधारस न कर उजोर। धनिके बनिके धन बोलव मोर॥
अधर समीप दसन कर जोति। सुन्दर सीम नैसाउलि मोति॥

अर्थात् तुम अपने मुख को आँचल से ढक कर ही रक्खो, नहीं तो चन्द्रमा की चोरी चले जाने की लोगों ने रिपोर्ट लिखाई है, और चोरी किये गये माल की घर-घर तलाशी ली जा रही है, जान पड़ता है—चोरी का अपराध कहीं तुम्हीं पर न लगा दिया जाय ? सुन्दरि ! तुम मेरे उपदेश को सुनो, जिससे स्वप्न में भी तुम्हें विपत्ति या क्लेश न सहना पड़े। देखो ! तुम अपनी मुसकान-सुधा को भी बाहर प्रकट न होने देना, अन्यथा इस गाँव का धनिक बनिया (नन्द का लाला) तुम्हारे मुख पर अपनी सम्पत्ति का दावा ठोंक देगा। एक और बड़ी कठिनाई तुम्हारे साथ है,तुम्हारे अधर-पल्लव के पास ही दन्त-पंक्ति चमचमा रही है, जैसे सिन्दूर की सीमा में मोती बैठाये गये हों—यह भी चोरी का ही माल समझा जायगा। अतः राधे ! सावधान हो जाओ, अपने मुँह को आँचल से ढकलो, नहीं तो वह छलिया कान्हा तुम्हें मुकद्दमे में फंसा देगा।

और एक दिन नन्दनन्दन प्रियतमा श्रीराधा की कमनीय सुन्दरता पर मुग्ध होकर मिलने की तीव्र उत्कण्ठा से मार्ग के कदम्ब वृक्ष पर बैठकर मुरली में धीरे-धीरे

नाम लेकर पुकार रहे हैं। सखी ने आकर श्रीराधा को कह दिया है, राधे ! श्रीकृष्ण तुम्हारे लिये प्रतिक्षण व्याकुल हैं, देखो, यमुना तटवर्त्ती उपवन के मार्ग में कदम्ब वृक्ष पर बैठे वे बार-बार मुँह फेरकर तुम्हें ताक रहे हैं, मानो वे किसी से पूछ रहे हैं कि प्राण प्रिया राधा सखीयूथ के साथ दही बेचकर लौटी या नहीं। हे बुद्धिमती ! जरा मेरी बात भी मान लो, श्रीकृष्ण तुम्हारे प्रति अत्यधिक अनुरक्त हैं, तुम उन नन्द-किशोर की वन्दना करो :—

नन्दक नन्दन कन्द बेर तरुतर धिरे-धिरे मुरली वजाव।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि-बेरि बोलि पठाव॥
सामर तोरा लागि अनुखने बिकल मुरारि।
जमुनाक तीर उपवन उदबेगल फिरि-फिरि ततहि निहारि।
गोरस विके अवइते जाइते जनि-जनि पुछ बनमारि॥
तोहे मतिमान सुमति मधुसूदन वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन वर जोवति बन्दह नन्दकिशोरा॥

सखी के मुख से संवाद सुनकर श्यामा श्रीराधा को प्रेम वैचित्री के भाव उत्पन्न हो गये हैं, वे अनन्त काल के मिलन सुख का आस्वादन-आनन्द प्राप्त करने पर भी अपने को अतृप्त ही अनुभव करती है, क्योंकि अविच्छिन्न मिलन से भी मिलन-स्पहा कभी प्रशमित नहीं होती, इसी कारण उनकी अनुभूति नित्य नवीन ही बनी रहती है, वे अपनी प्रिय सखी से कहती हैं :—

सखि ! मेरे अनुभव की बात मुझसे मत पूछ ? सच तो यह है कि प्रीति और अनुराग वही है, जो क्षण-क्षण में नूतन होता रहता है। रमणीयता का रूप भी तो ऐसा ही विलक्षण है—"क्षणे क्षणे यन्नवताभ्रपैति"। सखि ! मैंने जीवन भर उस रूप को देखा है, परन्तु मेरे निगोड़े नेत्र तृप्त नहीं हुए, आँखों की प्यास नहीं मिटी। उनके प्रिय मधुर बोल भी बराबर सुनती रही हूँ, तो लगता है इन कानों ने उनको छूआ तक नहीं। मेरे श्रवण तृप्त नहीं हुए। कितनी संभव है अनन्त मधु-यामिनी को रमण में—आनन्द में बिता दिया, परन्तु मैं आज तक यह नहीं जान सकी कि केलि कैसी होती है। उन्हें लाख-लाख युगों तक हृदय में धारण किये रही, परन्तु आज तक हृदय नहीं जुड़ाया। सखि ! कितने ही विदग्धजनों ने रस का अनुमोदन तो किया, परन्तु अनुभव किसी ने नहीं देखा, प्रीति की यह कैसी विचित्र रीति है।" विद्यापति के पद में अनुभव कीजिये :—

सखि ! कि पूछसि अनुभव मोय।
से हो पिरीति अनुराग वखानत, तिले तिले नूतन होय॥
जनम अवधि हम रूप निहारनु, नयन न तिरपित भेल।
से मधुर बोल श्रवन हि सुनल, श्रुति पथे परशन गेल॥

कत मधु यामिनि ये रभसे गमाओल, न बुझल कैसन केल।
लाख लाख युग हिय हिय राखल,तइयो हिया जुड़ल न गेल॥
कत विदग्ध जन रस अनुमोदह, अनुभव काहु न देखि।
भनइ विद्यापति हृदय जुड़ाइत, मिलय कोटि में एक॥

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के पूर्व ही बंगाल के कवियों में ब्रजरस माधुरी प्रचारित हो चुकी थी। मैथिल के विद्यापति की भांति बंगाल में चण्डीदास गोविन्ददास और ज्ञानदास आदि ने अपनी वाणी के द्वारा श्रीराधाकृष्ण के दिव्य लीलारस का वर्णन जिस चमत्कारिक ढङ्ग से किया है—वह अद्वितीय है। भावों की गहराई में पहुंचकर प्रेम की नाना अवस्थाओं का चित्रण कर इन्होंने विलक्षण कार्य किया है। श्रीचण्डीदास के पूर्वराग, मिलन और विरहभाव के पदों में कितनी मादकता है—यह अनुभव से ही जाना जा सकता है।

कानु—श्रीकृष्ण की प्रीति के बारे में वे कहते हैं– जैसे नीम और सुधा को एकत्र कर दिया हो, कानु की प्रीति बाहर से सरल किन्तु अन्तर में विष जैसा दाह पैदा करती है, कानु की प्रीति चन्दन की भांति है—जो घिसने पर तो सौरभ फैलाता है किन्तु हृदय पर लेपन करने ही दुगुनी दाह पैदा करता है :—

निमे सुधा दिया एकत्र करिया ऐछन कानुर लेह।
कानुर पिरीति वाहिरे सरल अन्तरे गरल हय॥
कानुर पिरीति चन्दनेर रीति घषित सौरभमय।
घसिया आनिया हियाय लइते, दहन द्विगुण हय॥

—चंडीदास

'श्याम' इस दो अक्षर वाले नाम का श्रीराधा के हृदय पर कितना प्रभाव हो जाता है, नाम सुनते ही प्राण छटपटाने लगते है, न जाने श्याम-नाम में कितना मिठास भरा है, श्याम-नाम जपते-जपते मन, प्राण, इन्द्रिय अवस हो गये हैं। अब उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है :—

सइ केवा सुनाइले श्याम नाम ?
कानेर भितर दिया मरमे पशिलगो,आकुल करिल मोर प्राण॥
ना जानि कतेक मधु श्यामनाम आछेगो,वदन छाड़िते नाहि पारे।
जपिते जपिते नाम अवश करिल गो, केमने पाइव सइ तारे॥

नाम, रूप और लीलाओं की विचित्र करतूत और आकर्षण पर मुग्धा बनी बैठी श्रीराधा—अब एक निश्चय करके कहती हैं कि बन्धु ! प्रियतम ! मैं और क्या कहूँ ? मरण-जीवन और जन्म-जन्म में तुम्ही मेरे प्राणनाथ हो मैंने अपने प्राणों को तुम्हारे चरणों के फंदे में बाँधा है, सब कुछ समर्पित कर तुम्हारी दासी बनी हूँ। इस कुल, उस कुल—दोनों कुल और गोकुल में मैं तुम्हारे सिवाय अपना किसे समझूँ ? तुम्हारे चरण कमलों को शीतल समझ मैंने शरण ली है :—

बंधु ! कि आर बोलिवो आमि।
मरणे - जीवने जनमे जनमे, प्राणनाथ हय तुमि॥
तोमार चरणे आमार पराणे, बांधिल प्रेमेर फांसि।
सब समपिया एक मन हैया, निश्चय हइलाम दासी॥
ए कुले ओकुले दुकुले गोकुले, आपना बलिब काय।
शीतल बलिया शरण लइनु, ओ दुटि कमल पाय॥

—चंडीदास

श्रीकृष्णदर्शन—लालसा में श्रीराधा तन्मयता को प्राप्त हो गई है, उनकी समस्त इन्द्रियाँ कृष्णरूप हो चली हैं। लाख प्रयत्न करने पर भी वे इन्द्रियों को श्रीकृष्ण से विमुख नहीं कर पा रहीं :—

जतो निवारिये ताप निवारे ना जाय रे।
आन पथे धाइ पद कानु पथे धाय रे॥
ऐ छार रसना मोर हइलोकि वाम रे।
जार नाम नाहि लइबो लयतार नाम रे॥
ऐ छार नासिका मुइ जतो करूँ बंध।
तबु त दारुण नासा पाय तार गंध॥
जार कथा ना सुनिवो करि अनुमान।
पर संग सुनिते आपनि जाय कान॥
धिक रहुं ए छार इन्द्रिय मोर सव।
सदा से कालिया कानु हय अनुभव॥
चंडीदास कहे राइ भालो भावे आछी।
मनेर मरम कथा कारे जनि पूछौ॥

अर्थात् जितना भी मैं मन को रोकती हूँ—वह रुकता नहीं, दूसरी ओर जाने वाले चरण कानु-कृष्ण के पथ पर ही दौड़ पड़ते हैं। मेरी अभागी जीभ भी विपरीत हो गई है, जिसका नाम नहीं लेना चाहती, जिद कर उसी का नाम लेती है, अभागी नाक को भी मैं कितना ही बन्द करती हूँ—फिर भी यह श्याम की गन्ध को ही लेती है। मैं जिसकी चर्चा सुनना नहीं चाहती, ये कान दौड़कर उधर चले जाते हैं। मेरी तो सभी इन्द्रियाँ अभागी हैं, इन्हें धिक्कार है—इन्हें तो सदा काले कानु का ही स्मरण होता रहता है। और अब इस तरह नहीं, इस अपार दुःख से मुक्ति तो अवश्य मिलेगी किन्तु मरने के बाद ही मिलेगी, परन्तु प्रिय को भी तो एक बार इस दुःख की अनुभूति होनी चाहिये, जिससे वे समझ सकें कि किस अपार-असह्य विरह-वेदना में राधा ने प्राण त्याग किया था, इसी वेदनामय हृदय-पीड़ा में छटपटाती श्रीराधा प्रियतम श्रीकृष्ण से कहती हैं :—

बंधु कि आर बलिब तोरे।
आपना खाइया पिरीति करीनु, रहिते नारिनु घरे॥
कामना करिया सागरे मरिब, साधिब मनेर साधा।
मरिया हइबो श्रीनन्देर नन्दन, तोमारे करिबो राधा॥
पीरिति करिया छाड़िया जाइबो, रहिबो कदम्ब तले।
त्रिभङ्ग हइया मुरली पूरिब, जखन जाइबे जले॥
मुरली सुनिया मुरछा हइबे, सहजे कुलेर बाला।
चण्डीदास कय तबे से जानिबे, पीरिति केमन ज्वाला॥

अर्थात् बन्धु-प्रियतम! तुम्हें और क्या कहूँ? अपने को खाकर मैंने तुमसे प्रीति की, घर में न रह सकी। पर तुमसे भी न मिल सकी। अब मैं भी कामना करके सागर में मरूँगी, तब मन की साध पूरी करूँगी। मर कर मैं नन्दनन्दन होऊँगी और तुम्हें राधा बनाऊँगी। तुमसे प्रीति करके छोड़ आऊँगी। कदम्ब के नीचे बैठकर त्रिभंग होकर वंशी बजाऊँगी और तब तुम पानी भरने जाओगे, तुम सहज-कुल-वाला मेरी मुरली ध्वनि सुनकर मूर्च्छित होओगे? प्रियतम? तब समझोगे कि प्रीति की जलन कैसी होती है।

श्रीराधा जिधर भी दृष्टि डालती हैं, सब श्याममय ही दीखता है, वे अपनी मर्म व्यथा को किसी से कहना भी नहीं चाहती, देखिये, एक और पद :—

काहारे कहिबो मनेर मरम केवा जावे परतीत।
हियार माझारे मरम वेदना सदाई चमके-चीत॥
गुरुजन आगे दांड़ाइते नारि सदा छल छल आंखि।
पुलके आकुल दिक नेहारिते सब श्याममय देखि॥
सखीर सहिते जलेरे जाहते से कथा कहि बार नय।
जमुनार जल करे झलमल ताहे कि पराण रय॥
कुलेर धरम राखिते नारिनु कहि लाम सबार आगे।
कहि चण्डीदासे श्याम सुनागर सदाई हियाय जागे॥

अर्थात्—मन के मर्म को किससे कहूँ? कौन विश्वास करेगा, मेरे हृदय में मर्म-वेदना है—जिससे चित्त सदा ही चौंकता रहता है, गुरुजनों के आगे खड़ी नहीं हो पाती, क्योंकि आँखें सर्वदा छलछलाती रहती हैं, पुलक से आकुल मैं जिधर भी देखती हूँ सब श्याममय ही दीखता है। झलमलाते हुए जमुनाजल को देखकर क्या मेरे प्राण स्थिर रह सकते हैं। मैं अपना कुल-धर्म न रख सकी, इसीसे तुम्हारे सब के सामने सब कुछ खोल कर कहती हूँ कि ये श्याम-सुनागर सदा ही मेरे हृदय में विराजित है।

स्वजन-परिजन, अड़ोसी-पड़ोसी श्रीराधा के इस प्रेमाशक्ति को देख-देख निन्दा कर रहे हैं, परन्तु कृष्ण-प्रेम-दीवानी श्रीराधा को इस अपवाद से रंचमात्र भी ग्लानि या क्लेश नहीं है, क्योंकि, उन्होंने तो जीवन का सर्वस्व श्रीकृष्ण को अर्पित कर रखा है, इस समर्पण-सुख के लिये वे सब कुछ सहने को तैयार हैं :—

बन्धु ! तुमि से आमार प्राण ।
देह मन आदि तोहारे संपेछि, कुल शील जाति मान ॥
अखिलेर नाथ तुमि हे कालिया, जोगीर आराध्य धन ।
गोप-गोआलिनी हाम मतिहीना, ना जानि भजन पूजन ॥
पिरीति रसैते ढालि तनु, मन दियाछि तोमार पाय ।
तुमि मोर पति तुमि मोर गति, मन नाहि आन भाय ॥
कलंकी बलिया डाके सब लोके, ताहाते नाहिक दुख ।
तोमार लागिया कलंकेर हार, गलाय परिते सुख ॥
सती वा असती तोमाते विदित, भाल मन्द नाहि जानि ।
कहे चण्डीदास पाप पुण्य सम, तोहारि चरण खानि ॥

प्रियतम ! तुम्हीं मेरे प्राण हो, देह, मन, कुल, शील, जाति, मान—सभी तुम्हें सौंपा है, हे काले ! अखिलनाथ ! योगियों के आराध्य धन ! मैं गोप-ग्वालिनी अत्यंत दीन हूँ । भजन-पूजन नहीं जानती । प्रीति-रस में ढालकर अपना जीवन तुम्हारे चरणों में सौंप दिया है, तुम्हीं मेरे पति और गति हो, मन को दूसरा नहीं भाता । लोग मुझे कलंकिनी कहते हैं—कहें । तुम्हारे गले में कलंक का हार पहनने में मुझे सुख है । मैं सती हूँ अथवा असती यह तुम जानते हो । मैं भला-बुरा कुछ नहीं जानती । तुम्हारे चरणों में पाप-पुण्य बराबर हैं ।

और भी लोग तो श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाले हैं, वे सब शरीर की सुध-बुध क्यों नहीं बिसरा बैठते ? उत्तर में कहा गया है ? :—

"सबार बंशी काने बाजे, बंशी बाजे आमार हियार मांझे"

श्रीराधा कहती हैं—भाई! सबके लिये तो कान्हा की बंशी कानों में बजती है, पर मेरे लिये तो उसकी बंशी हृदय में बजती है ।

वे पुनः श्रीकृष्ण के भावावेश में कहती हैं, श्रीकृष्ण :—

"तोमारइ गरबे गरबिनी हाम, रूपसी तोमार रूपे"

मैं तुम्हारे गर्व से ही गर्विता हूँ और तुम्हारे रूप से ही रूपसी हुँ । वे पुनः अपनी सखी से कहती हैं, सखि ! मर्म न जानकर जो धर्म बखानते हैं, ऐसे लोगों की बात से काम नहीं, वे बाहर ही रहें, मेरे बाहर—द्वार के पट बन्द हो गये हैं, केवल भीतर का द्वार खुला है :—

मरम ना जाने धरम बखाने, एधन आछये जारा।
काज नाहि सखि तादेर कथाय, वाहिरे रहुन तारा॥
आमार वाहिर दुआरे कपाट लेगेछे, भितर द्वार खोला॥

जो प्रीति करना नहीं जानता, उसने तीनों भुवनों में जन्म लेकर भी सुख को नहीं पहचाना :—

"सेइ पिरीति ना जाने जारा, ए तिने भुवने जनमे-२ कि सुख जान ये तारा"

फिर अचानक प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण का स्मरण हो आता है, उन्हें लगता है, श्रीकृष्ण अभी-अभी मेरे आगे से निकल कर दूसरे के घर गये हैं, वे सहसा बोल उठती है :—

सेइ केमने धरिब हिया।
आमार बन्धुआ आन वाड़ी जाय, आमार आंगिणा दिया॥
ए हेन बन्धुरे मोर जे जन भांगाए,हाम नारी अवलार वध लागे ताए।
आमार पराण जेमति करिछे सेमति हडक से,
विधि जदि सुनित मरण हइत घुचित सकल दुःख॥

सखि ! तुम्हीं बताओ ? मैं कैसे प्राणों को धारण करूँ। मेरा बन्धुआ (प्रियतम) मेरे ही आंगन से होकर दूसरे के घर जाता है। किन्तु सखि ! मेरा प्रिय तो निर्दोष है, वह कभी ऐसा नहीं था। निश्चय ही किसी सखी ने उस पर जादू टोना किया है, जिससे मेरा सरल स्वभाव वाला प्रियतम बदल गया है। सखी ! मैं निश्चय कहती हूँ कि जिस किसी ने मेरे बन्धु का मन मेरी ओर से खट्टा किया है, उसे मुझ नारी अवला वध का पाप लगेगा। इतना ही नहीं, क्रोध दुःख से संतप्त श्रीराधा एक अभिशाप और भी देती हैं—सखि ! "जिसने इस प्रचण्ड यातना की अग्नि-भट्टी में मुझे तिल-तिल कर जलाया है, मैं शाप देती हूँ, कि भगवान उसे भी यही गति दें।" सखि ! विधि यदि मेरी पुकार सुनता और मेरा मरण होता तो सब दुःखों से पीछा छूट जाता।

तात्पर्य में प्रियतम प्राणधन श्रीकृष्ण-प्राप्ति की तीव्र व्याकुलता, प्रेम-तत्व प्रेमास्पद की एकनिष्ठ शाश्वत आकांक्षा ही यहाँ उच्चतम आदर्श और प्रेम-पथ पथिक के लिये चिर दिन पाथेय है, इसीलिये ये विरह-विदग्धा श्रीराधा ने एक ही व्रत ले लिया है :—

"ओ दुटि चरण पराणे धरिया, नयन मुदिया थाकि।"

उनके दोनों चरणों को हृदय पर रखकर नयनों को मूँदे बैठी रहती हूँ।

गौड़ीय सम्प्रदाय के दो अन्यतम कवि श्रीज्ञानदास जी और श्रीगोविन्द दासजीने अपनी रस पदावलियों से बंगला साहित्य को कैसा संजोया है, दो एक नमूना देखिये।

श्रीराधा सखी से कहती है—सखी ! बन्धु का प्रेम भी कैसा अनौखा होता है, जैसे दरिद्र को सोना मिल जाने पर उसकी आँख दिन-रात उसी पर लगी रहती है, उसी तरह बन्धु से दृष्टि हटाते ही हृदय बेचैन हो उठता है, हृदय से हृदय मिलाते समय

वक्षस्थल का चन्दन भी व्यवधान उत्पन्न करता है। वह शरीर की छाया की भाँति संग ही लगी रहती है। क्षण भर में कितनी बार मुँह ताक कर आँचल से शरीर का पसीना पोंछना पड़ता है। जागते-सोते दूसरी बात सुहाती ही नहीं, हर समय उन्हीं का नाम लेती रहती है। क्या संसार में ऐसी प्रीति कहीं है।—

सेइ किबा से बन्धुर प्रेम।
आखि पालटिते थिर नाहि माने, येन दरिद्रेर हेम॥
हियाय हियाय लागियो वलिया, चन्दन ना माखे अंगे।
गायेर छाया हइ एर दोसर, सदाइ फिरये संगे॥
तिलेकत बेरि मुख ने हारिया, आंचर मोछये घाम।
कोरे थाकिते कत दूरे हेन मानये, तेइ सदाइ लय नाम॥
जागिते घुमाइते आन नाहि चित्ते, रसेर पसार काछे।
'ज्ञानदास' कहे एमन पीरिति, आर कि जगते आछे॥

श्रीराधा के दिव्य अहैतुक निःस्वार्थ प्रेम ने श्रीकृष्ण को वशीभूत कर लिया है, इतना प्रभावित कर लिया है कि श्रीकृष्ण की चित्तवृत्तियाँ राधामयी बन गई है, प्रिया श्यामा इस प्रभाव को समझ रही हैं, तभी तो वे कहती हैं सखी! मेरे अंग का रंग पीला है, इसीलिये तो श्यामसुन्दर पीत वस्त्र (पीताम्बर) धारण करते हैं, मेरा नाम पुकारने के लिये ही वे मुरली को प्राणों से भी प्यारी समझते हैं, मेरे अंग की सुगन्धि जिस क्षण, जिस दिशा में फैलती है, वे उसी क्षण उसी दिशा में दोनों हाथ पसारकर पागल होकर दौड़ते हैं। हाँ! सखी यह सत्य है, कि लाखों सुन्दरी गोपियां जिसके चरणों की सेवा करने के लिये रात-दिन लालायित रहती हैं, उसी श्याम को राधा ने अपनी प्रीति के बन्धन में बाँध रक्खा है :—

आमार अङ्गेर वरण लागिया, पीत बास परे श्याम।
प्राणेर अधिक करेर मुरली, लइते आमार नाम॥
आमार अङ्गेर वरण सौरभ, यखन ये दिगे जाय।
बाहु पसारिया बाउल हइया, तखने से दिग धाय॥
लाख कामिनी भावे राति दिनि, ये पद सेविते चाय।
'ज्ञानदास' कहे आहीर नागरी, पिरीते बांधल ताय॥

रसिकवर्य श्रीगोविन्द दासजी ने भी इन व्रज भावों को कैसा संजोया है, श्रीराधा जितना ही अपने भावों का गोपन करना चाहती हैं, उतने ही वे बाहरी चिन्हों के द्वारा प्रकट हो जाते हैं, पद के भावों को समझने का प्रयास कीजिये :—

निशसि निहारसि फुटल कदम्ब,
करतले सघन वयन अवलम्ब।

खेने तनु मोड़सि करि कत भंग,
अविरल पुलक मुकुले भरु अंग ।।

× × × ×

भावकि गोपसि गोपत ना रहइ,
मरमक बेदन वदन सब कहइ ।
यतने निगरसि नयनक लोर,
गदगद शब्दे कहसि आध बोल ।।
आन छले अंगन अनछले पंथ,
सघने गतागति करसि एकन्त ।
दूरे रहु गौरव गुरु जन लाज,
'गोविन्ददास' कह पड़ल अकाज ।।

रसिकाचार्य श्रीगोविन्द दासजी ने अपने एक पद में श्रीराधा के मधुर अभिसार का वर्णन किया है, वृषभानुकिशोरी आज तक अकेले रात्रि में नंगे पैरों, सघन वन में जहाँ घनघोर वर्षा पड़ रही हो कभी भी घर से बाहर नहीं निकली हैं, आज उन्होंने शत-सहस्त्र कष्ट सहन कर श्रीकृष्ण से मिलने की ठानी है, कष्टों का सामना कैसे किया जा सकेगा—इसके लिये वे कृष्ण-प्रेम को ही अपना गुरु मानकर उसी से शिक्षा ग्रहण कर रही है, देखिये कैसी विचित्र स्थिति है :—

हरि अभिसारक लागि ।
कण्टक गाड़ि कमलसम पदतले, मंजीर चीरहिं झाँपि ।।
गागरि वारि डारि करि पिच्छल, चलतहि आंगुलि चांपि ।
दूतर पंथ गमन धनि साधये, मन्दिर यामिनी जानि ।।
कर युगे नयन मुन्दि चलु भामिनी, तिमिर भयानक आशे ।
मणि कंकण पण फणि मुख बन्धन, शिखई भुजग गुरु पाशे ।।
गुरुजन वचन वधिर सम मानइ, आन सुनइ कह आन ।
परिजन वचने मुगधि समहासइ, गोविन्ददास प्रमान ।।

क्या ही विचित्र साधना है, अनुराग से मतवाला चित्त क्या कुछ करने को प्रस्तुत नहीं रहता । वर्षा ऋतु की घोर अँधेरी रात में प्राणप्रेष्ठ से मिलने जाना है और नंगे पैरों जाना है, मार्ग में काँटे होंगे तो पैर में लग जायेंगे, उन्हें निकालने में देर हो गई तो ? इसलिये पहले से ही आंगन में कांटे बिछाकर उन पर चलने का अभ्यास कर रही हैं—श्रीराधारानी । चलते समय नुपुरों की ध्वनि न होने पावे—इसलिये उन पर चीर बांध कर चलकर देखती हैं कि अब आवाज तो नहीं आ रही है ? रात्रि में आँगन में घड़ा भरा पानी उड़ेलकर कीचड कर लेती हैं उस पर चलने का अभ्यास अँगूठा गाड़कर कर रही है, कीचड़ भरे मार्ग में कहीं फिसल गई तो ?

घोर अन्धकार में चलने का अभ्यास करने के लिये हाथों से नेत्रों को मूँदकर चलना सीख रही हैं, इस संकट ग्रस्त मार्ग में सर्प भी आ सकता है, यदि सर्प ने डस लिया तो ? तो हाय! हाय! श्यामसुन्दर को बड़ा दुख होगा। इसलिये गारुड़ि—सर्प का जहर उतारने वाले को बुलाकर मन्त्र सीखती है। हाँ ! जब यह दशा है, तो कर्ण भी बाधिर बन जाते हैं—गुरुजनों की बात सुनी ही नहीं जाती। वे पूछते हैं, राधा ! तुझे क्या हो गया है ? पागल हो गयी है क्या ? तो अपना भोला सा बदन उठा, भोले से नयनों से निहार, एक भोली सी हँसी हँसकर रह जाती हैं—ऐसी है यह अनुराग की अनौखी दशा। गौड़ीय सम्प्रदाय के बड़े-बड़े रस-सिद्ध महापुरुषों ने इसी प्रकार की दिव्य वाणियों से ब्रजरस को भर दिया है। इस सम्प्रदाय के बंगला पद कर्त्ता महानुभावों का एक संग्रह "पदकल्पतरु" के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें तीन हजार से भी अधिक रस वाणियाँ भरी हैं, कितने पद तो ऐसे हैं, जिनको पढ़ते-बांचते ऐसा भावोद्रेक होता है कि वाणी गद्‌गद हो जाती है और शरीर पुलकित हो उठता है। यहाँ इस ग्रन्थ में तो संक्षेप में ही श्रीमन्महाप्रभु के कृपापात्र इन महापुरुषों की रस मयी भावनाओं का दिग्दर्शन कराया गया है।

गौड़ीय सम्प्रदाय की ब्रजभाषा वाणी—

यह हम पहले ही बता चुके हैं कि वर्त्तमान ब्रजभूमि के समुद्धर्त्ता या जीर्णोद्धारक श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव और उनके अनुयायी षट् गोस्वामी—श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी ही माने जाते हैं। जहाँ उन्होंने स्थूल तीर्थों को प्रकट किया है, वहाँ इन महानुभावों ने अपनी दिव्य प्रतिभा और उद्‌भट-विद्वत्ता से ब्रजरस के तत्वों, सिद्धान्तों, विवेचनों, ऊहा-पूहों को तार-तार कर सुगम्य परिपाटी से सर्वग्राह्य बनाकर ऐसा कल्याणप्रद बना दिया है कि आज बड़े-बड़े रसज्ञ शास्त्री और भोले भावुक सन्त भी उसकी छाया में बैठकर प्रिया-प्रियतम की रसानुभूति में मस्त झोंके ले रहे हैं।

इसी प्रकार इनके अनुगत ब्रजभाषा वाणियों के वाणीकार महानुभावों ने भी 'मीठी ब्रज की बोली' में कितने सुन्दर भाव भरे हैं, यहाँ हम आगे के पेजों में दिखा रहे हैं। ब्रजभाषा वाणीकारों में मुख्यतः—श्रीगदाधर भट्ट, श्रीहरिराम व्यास, सूरदास मदनमोहन, मनोहरदास, श्रीप्रियादास, श्रीललितकिशोरी, श्रीकिशोरीदास, माधवदास, रामदास, चन्द्रगोपाल आदि प्रसिद्ध हैं। श्रीगदाधर भट्टजी ने अपनी वाणियों में कृष्णानुराग, प्रेमोन्माद, वृन्दावन वास होली तथा बसन्त वर्णन बड़ा ही सुन्दर लिखा है। श्रीकृष्ण को मूर्त्तिमन्त बसन्त बताते हुए वे कहते हैं :—

देखो प्यारी कुञ्जविहारी मूरति बन्त बसन्त।
मौरी तरुनि तरनिजा तन में, मनसिज-रस बरसन्त॥

अरुन अधर नव पल्लवशोभा, विहसनि कुसुम-विकास ।
फूले विमल कमल-से लोचन, सूचत मन उल्लास ॥
चलि चूरन कुन्तल अलिमाला, मुरली कोकिल नाद ।
देखत गोपीजन बनराई, मदन मुदित उनमाद ॥
सहज सुवास स्वास मलयानिल, लागत परम सुहायौ ।
श्रीराधामाधव गदाधर के प्रभु, परसत सचु पायौ ॥

कैसा सुन्दर वर्णन हुआ है—बौराई यमुना, उमड़ता प्रेम सिन्धु, नवकिसलय, लाल अधर, श्याम-सलौने का उन्माद, यौवना वेग में लोचनों का वितान, श्याम की घुंघराली अलकों पर भौंरों की भीड़, उधर मदोन्माद तो इधर गोपी-हृदय को मथने वाला वनराज का असीम सौन्दर्य और प्रेम को तरङ्गों में लहरा देने वाली सुरभित-समीर । कितना सुन्दर समा बना है । श्रीगदाधर युगल चरणों का स्पर्श पाकर कितने प्रसन्न हैं ।

एक और पद में उन्होंने वन से आते 'वनमाली' का चित्र खींचा है :—

आजु ब्रजराज कौ कुँवर बनते वन्यौ ।
देखि, आवते मधुर अधर रंजित बेनु ॥
मधुर कलगान निज नाम सुनि स्रवन पुट ।
परम प्रमुदित वदन फेरि हूं कति धेनु ॥
मद विघूर्नित नैन मंद विहसनि बैन ।
कुटिल अलकावली ललित गोपदरेनु ॥
ग्वाल बालनि जाल करत कोलाहलनि ।
भृङ्ग दल ताल धुनि रचत संचत चेनु ॥
मुकुट की लटक अरु चटक पट पीत की ।
प्रकट अंकुरित गोपी मनहु मैनु ॥
कहि 'गदाधर' जु इहि न्याय ब्रजसुन्दरी ।
विमल वनमाल के बीच चाहतु एनु ॥

ऐसे ही एक दूसरे रसिक सन्त श्रीसूरदास मदनमोहन का नाम इस सम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध है, इनके रचित पदों में—रासविलास, मान, विवाह, होली, हिंड़ोला आदि का सरस वर्णन हुआ है । उनके एक पद में चितचोर नवलकिशोर गोविन्द की झांकी का दिव्य दर्शन कीजिये :—

गौर गोविन्द नवलकिशोर सखी चितचोर,
ठाड़े हैं द्रुम की छहियाँ ।
अधर धरे मुरली ऊंच सुर लिये सुनि तोहि बुलावत हैं,
माई री तू कत कहति नहियाँ ॥

विनहिं अंजन खंजन से नैना पिय-मन-रंजन,
रहैं तिरछी ह्वै पिय - मन - महियाँ।
'सूरदास मदनमोहन' के ध्यान तेरो,
निसिवासर सखी, कौन प्रकृति तो पहियाँ ॥

एक और दूसरे पद में श्याम सलौने श्रीकृष्ण के मधुकर रूप की अनुपम नख-शिख छवि का वर्णन हुआ है, प्रातः उत्थापन की बेला में द्वार पर सुर-नर-मुनि दर्शनार्थ खड़े हैं, भक्तजन जगा रहे हैं :—

"मधु के मतवारे श्याम खोलो प्यारे अलके।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं॥
सुर नर मुनि द्वार ठाड़े दरस हेतु किलकैं।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं॥
कटि पीताम्बर मुरली का स्रवन कुण्डल झलकैं।
'सूरदास मदन मोहन' दरस दैहो भलकैं॥

निकुञ्ज लीलाओं का वर्णन भी सूरदास मदनमोहन के काव्य में खूब हुआ है, उनके ही एक पद में अभिसार का हृदय स्पर्शी चित्र है,सखी श्रीराधा से कह रही है—प्रिये ! राधिके ! देखो, श्रीकृष्ण का 'राधारमण' नाम तुम्हारे साथ रमण करने से ही पड़ा है, चलो सखि ! श्रीकृष्ण कुञ्जभवन में बैठकर बंशी में तुम्हारा 'राधा' नाम भर कर टेर रहे हैं, देखो, वे तुम्हारे ही ध्यान में निमग्न हैं, रोम-रोम से प्रतीक्षातुर श्रीकृष्ण को चहुँ ओर से तेरी ही चरण-ध्वनि सुनाई पड़ती है, तेरी ओर से प्रवाहित होने वाले पवन को नेत्र बन्दकर आलिङ्गन करने लगते हैं,श्रीराधे! तुम शीघ्र चलो:—

तू सुनि कान दै री, मुरली तेरे गुन गावै श्याम कुञ्ज-भवन।
सम्मुख होइ करि ताहि कौं आंकौं भरि सो,
तन परसि आवे जो पवन॥
तेरोई ध्यान धरत उर अन्तर नैंन मूंदि निकसत उर डरपत,
तेरोई आगमन सुनि श्रवनन।
'सूरदास मदन मोहन' सो तू चलि मिलि तोहिं तैं पायौ,
नाम राधारमन॥

एक और सुन्दर छवि का अवलोकन कीजिये, श्रीश्यामसुन्दर और प्रिया श्यामा एक दूसरे के आमने-सामने विराजमान हैं, दोनों की कान्ति दोनों के अङ्गों पर प्रतिबिम्बित है, मानो गहरे यमुना जल में स्नान करने बैठे हैं:—श्रीसूरदास मदनमोहन खड़े दर्शन कर रहे हैं, आप भी दर्शन कीजिये :—

श्याम निकट सन्मुख ह्वै बैठी श्यामाकंचन मणि आभूषण पहिरें।
साँवरे तनमें प्रतिविम्बित है,माना स्नान करन बैठी,
जमुना जल में गहिरैं॥

अङ्ग अङ्ग आभास तरङ्ग गौर स्यामता, सुन्दरता शोभा की लहरैं।
'सूरदास मदन मोहन' मो पै कहि न आवत, मेरी दृष्टि न ठहरैं॥

श्रीहरिरामव्यास ओरछा नरेश के राजपुरोहित थे,किन्तु ब्रजरसमाधुरी में इतने अधिक डूबे हुए थे कि उनकी वाह्य दृष्टि में भी भक्ति के आगे कोई ऊँच-नीच,कुलीन-अकुलीन नहीं रह गया था। आप गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों में माने जाते हैं, वृन्दावन में व्यास घेरा में मुख्य गद्दी स्थान है, आपके सभी वंशज गौड़ीय सम्प्रदायानुगत दीक्षा शिक्षा ग्रहण करते हैं। श्रीव्यासजी ने भगवद्भक्तों, सन्तों, प्रेमियों को भगवान से भी अधिक बढ़ कर माना है,वृन्दावन वासी एक श्वपच को भी वे महत्व देते हैं, भक्तमाल में विस्तृत चरित्र वर्णित है, उन्होंने कहा है :—

व्यास कुलीननि कोटि मिलि,पंडित लाख पचीस।
स्वपच भक्त की पानही, तुलै न तिनके सीस॥
व्यास मिठाई विप्र की, तामै लागै आगि।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठनि खैये मांगि।

उनकी वृन्दावन-वास की निष्ठा और युगल चरणों का स्नेह उनकी रचनाओं से स्पष्ट झलकता है :—

ऐसे वही बसिये व्रज - बीथिन।
साधुन के पनवारे चुनि चुनि, उदर पोषियत सीथिन॥
घूरनि में के बीनि चिनघटा, रज्छा की जै सीतिन।
कुंज-कुंज प्रतिलता लोटि उड़, रज लागे अंगीथिन॥
नित प्रतिद रस स्याम स्यामा कौ,नित जमुना जल पीतिन।
ऐसेहिं व्यास होत तन पावन,इहि विधि मिलत अतीतिन॥

इन्होंने बड़े त्याग—वैराग्य पूर्ण जीवन से प्रियाप्रियतम की आराधना करते हुए ब्रजरस माधुरी का आस्वादन किया है, रास रस दर्शन में, निकुंज लीला के चिन्तन में कभी भी शारीरिक सुखों को इन्होंने महत्व नहीं दिया। वे तो सदा यही कामना करते रहे :—

ऐसो कब करिहौ मन मेरो।
कर करवा हरवा गुंजन को, कुंजन मांहि बसेरो॥
व्रज वासिन के टूक झूंट, अरु घर घर छाछ महेरो।
भूख लगै तब मांगि खाऊँगौ, गिनौं न साँझ सबेरो॥
इतनी आस "व्यास" की पुजवौ, मेरौ गांव न खेरो॥

इसके अतिरिक्त श्री व्यासजी ने सिद्धान्त पक्ष के सैकड़ों पद लिखे हैं। जो साधक के लिये सीधे और तीखे मार्ग का निर्देश करते हैं। श्रीप्रिया-प्रियतम की विहार लीलाओं के वर्णन में भी वे सबसे अग्रणी माने जाते हैं। उनके द्वारा वर्णित अनेक

लीलायें नितान्त एकान्त चिन्तनीय, और सेवनीय हैं, दूसरी ओर उनके ही द्वारा वर्णित लीलायें सर्व साधारण के उपयोगी भी हैं। उन्होंने नित्य बिहार की लीलाओं में शोडष शृङ्गारों से लेकर प्रिया-प्रियतम के क्रीड़ा-कौतुकों तक का वर्णन किया है। वे भाव की रस-पराकाष्ठा परक लीलाओं में मान-दान, रूप, सम्भ्रमआदि के वर्णन में तन्मयता को प्राप्त प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये उनके कुछ पदों का आनन्द लीजिये, नित्य-निकुँज में प्रिया-प्रियतम आँख-मिचौनी खेल रहे हैं। अचानक ही श्रीश्यामा ने श्यामसुन्दर की पीछे से आँखें बन्द कर ली हैं। श्यामसुन्दर पहिचान नहीं पाये, तब उन्होंने कैसे सुन्दर सम्बोधनों में प्रिया को सम्बोधित किया है जो देखते ही बनता है :—

चंपक-बीथिन फिरत अकेली, सुन्दरता की खानि।
राति अचानक स्याम, कुँवरि के लोचन मूँदे आनि॥
काकी नारि गारि हौं देहौं, तैरी करौं न कानि।
तूँ पाछे तें छलकरि मोहि, सुनाउ नैंक मूख बानि॥
गज मोतिन के गजरा, चचरि चुरी मुदरी तुव पानि।
पीन पयोधर पीठि गड़ावति, दीठि बरावति जानि॥
सबै मनोरथ पुजऊँ तेरे, करि मोसों पहिचानि।
कृपा बचन सुनि सन मुख करि, हँसि भेटी सुख निधानि।
'व्यास' स्वामिनिहिं मिलत कुँवरि कैं, भई लाज की हानि॥

व्यास जी ने अनेक भाव लीलाओं का वर्णन बड़ी ही सजीवता से किया है, किन्तु उनकी मानलीला तो हृदय को तार-तार कर देती है। मानिनी श्रीराधा को सखी-सहेलियां कितना-कितना समझा रही हैं, पद के भाव कलम से नहीं, वाणी सेभी नहीं—उस लीलास्थली में प्रत्यक्ष पहुँचकर ही अनुभव किये जासकते हैं :—

कबहूँ तैं काहू कौ कह्यौ न कियौ।
जुरत बसीठी तैं सीठी करि डारी, हठ करि कछुन लियौ॥
नैनन तोहि कुटिलता सिखई, और न हेत वियौ।
कठिन कुचन की संगति कौ फल, ह्वै गयौ कठिन हियौ॥
बिनु अपराधहिं साधु पियहिं, तैं कबहुँ न चैन दियौ।
सरधा हू तें कृपन अधर-मधु, पिय न अघाइ दियौ॥
सुनत चली आतुर ह्वै चातुरता, बिसरी सखियौ।
'व्यास' स्वामिनी भेंटत ही, मेरौ मोहन मरत जियौ॥

और सखी श्यामा को समझा रही हैं—मानिनि ! चलो, अपना साज-शृङ्गार सम्भारकर प्रिय के पास चलो, मैं ने कुंज-कुंज में तुझे ढूंढा है, तेरे बिना प्रियतम अत्यन्त व्याकुल हैं। तब सखी, श्रीराधा के पैरों पड़कर मनाकर ले आती है :—

मानिनि मानि लड़ैती, तोहिं मनमोहन बोली।
चाहत फिरत तोहि हौं कुँजनि कुँजनि बूझत डोली ॥
तो कारन रचि-पचि पिय पठई, चंपकलनि की चोली।
सुन्दर गोरे गात पहिरि चलि नील सारि पचतोली ॥
पाइन परति करति हौं बिनती तो सों बोलत बोली।
लेत बलाइ करति हौं हा! हा!,अब जिन होइ अबोली ॥
प्रान दान दै चली अली संग, प्रीति बढ़ी निरमोली।
'व्यास'स्वामिनिहिं कुँवर मिले हँसि,कँचुकि नीबी बँद खोली ॥

मान–मनौती के बाद 'प्राणदान' की शर्त्तपर श्रीश्यामा प्रियतम श्याममुन्दर से आकर मिल गई हैं, दोनों परस्पर गले से मिलकर प्रसन्न होगये और उसके पश्चात् मिलन सुख का आनन्द परस्पर जो लूटा गया, उसे कौन कह सकता है, इस रस की प्यास पीने से नहीं बुझती :—

वन बिहरत बृषभानु-किशोरी।
कुसुम पुंज सयनीय कुँज कमनीय, स्याम रंग बोरी ॥
नीबी बंधन छोरत,मुख मोरत पिय चिबुक चारु टकटोरी।
ओली ओढ़ि खोलि चोली दुख मेटि भेटि कुच जोरी ॥
सरस जघन दरसन लगि चरन पकरि हरि कुँवरि निहोरी।
मदन सदन कौ बदन विलोकत, नैननि मूँदति गोरी ॥
केस करषि आवेस अधर खंडित गंडनि झक झोरी।
रति विपरीति पीत छबि श्यामहिं,फबि गई अंगनि रोरी ॥
विविध विहार माधुरी अद्भुत, जो कोऊ कहै सु थोरी।
जाहि प्यास या रस को तासों, 'व्यास' प्रीति नित जोरी ॥

यह सब अद्भुत लीला का साक्षात् दर्शन कर श्रीहरिराम जी व्यास ने तो फतवा देदिया, कि भाई ! हमारी कोई जाति-विरादरी नहीं। हमारा तो गोत्र भी गोपाल है, माला ही जनेऊ है, हरि गुणगान ही बेद है, हाथ में करताल ही कुशा है—कैसा विचित्र सिद्धान्त है, वास्तव में जो एक बार इस लीला-रस का आस्वादन कर लेता है, उसके लिये संसार निःसार है, देखिये पद में व्यासजी कहते हैं :—

रसिक अनन्य हमारी जाति।
कुल देवी राधा बरसानौ खेरौ, ब्रजवासिन सों पाँति ॥
गोत गोपाल जनेऊ माला,सिखा सिखंडि हरि मन्दिर भाल।
हरि गुन नाम बेद धुनि सुनियत,मूँज पखावज कुस करताल ॥
साखा जमुना हरि लीलाषट् कर्म, प्रसाद् प्रान-धन रास।
सेवा विधि-निषेध जड़ संगति, बृत्ति सदा वृन्दावन बास ॥

सुमृत भागवत कृष्न नाम संध्या, तर्पन गायत्री जाप।
वंशी रिषि जजमान कल्पतरु,'व्यास'न देत असीस सराप ॥

गौड़ीय सम्प्रदाय के एक आचार्य श्रीप्रियादास जी का स्थान इस सम्प्रदाय में शिरोमणि स्थान माना जाता है,एक 'भक्तमाल की टीका' ही उनकी ऐसी विश्व प्रसिद्ध कृति है, जिसका सभी भक्तमाल अनुसरण करते हैं। श्री प्रियादास जी ने अतिरिक्त भी वृन्दावन महिमा, युगल-विहार और अनन्य निष्ठा आदि पर बहुत कुछ लिखा है, 'प्रियादास ग्रन्थावली' में ब्रज रस का प्रचुर वर्णन हुआ है। वृन्दावन वास के संबंध में उन्होंने क्याही अच्छा लिखा है :--

रह्यौ ठौर नहिं चलि सकै, कुँज कुँज छवि पुंज।
तरु तरु लपटी माधुरी, मधुप मधुर सुर गुँज॥
मिलत अनूठे रसिक जन, बन तजि चलें न पेड।
आप भाव भावित करें, गहे रंगीली एंड़॥
कोटि विपत सिर पर परैं, चंचल तऊन होइ।
सीस कटो दुख सब रहौ, नेंक न व्यापै सोइ॥
भ्रमत भ्रमत तरु तरु तरें, मन अपार सुख होय।
मानों जुगल सरूप सों, मिले नैन रस भोय॥
कहूँ चरन अरविन्द के, चिन्ह दीठ पर जाय।
दृग धारा सींचत तिन्हें, दृग ही माँझि समाय॥
कुँज विहारी रसिक चर, ताकी झाँकी पाय।
वाँकी गति मनकी भई, आकी मति भरि माय॥
मंदिर मंदिर नवल छवि, लखि लखि भाव अनूप।
वसी हिये वह माधुरी, टरै न नैंनन रूप॥
कबहू जमुना तीर तक, मन में होत विचार।
रास रसमसे प्रिया पिय, जल में कियो विहार॥

इसी प्रकार अनन्यता के बारे में श्रीप्रियादास जी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में लिखा है :--

कहत अनन्य मुख अर्थनि समझि परै,
सुनौ अब अर्थ हरि हित निरधार है।
जिती अन्य वस्तु तिनें तजै सो अनन्य सांचौ,
कहौ नीकें खोलि कीनों सुमति विचार है।
देह गेह नाते धन मन न आवेस कहूँ,
चहूँ दिसि साव बहरात बार बार है।

आन देव उत पितरादि की चलावै कौन,
इन्हें बिन त्याग नहिं भक्ति अधिकार है ।।

× × × ×

युगल किशोर जूने जाका मन चोर लियौ,
पियो हित रस ताके और कछु आसना ।
निश दिन गान रूप माधुरी को पान,
उर मुकुर समान नेकु वासना की वासना ।।
लागे दृग-भरी प्रेम-भरी सुनि बातें हरी,
खरी मति हरी जात घूमें मानों साँसना ।
कोऊ भाग पाय जो पै मिलै आइ ऐसनि सों,
देत झलकाइ, चख ऐसी ही उपासना ।।

और अब हम श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनुयायी गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख परम भागवत श्रीललित किशोरी जी के द्वारा वर्णित ब्रजरस माधुरी के रस-सागर में अवगाहन करने हेतु आपको किनारे पर ले चल रहे हैं। श्रीललित किशोरी जी की वाणियां ब्रजभाषा के पद और हिन्दी-उर्दू मिश्रित गजल और कव्वाली तक में हुई हैं। इनका दिव्य जीवन सर्वविदित है,लखनऊ के आखिरी नवाब बाजिद अलीशाह के आप खजाँची थे, किन्तु सब कुछ को लात मार कर वृन्दावन की ब्रजधूलि में प्रिया-प्रियतम के नाम की माला जपते किस प्रकार आपने त्याग, वैराग्य एवं तपोनिष्ठ जीवन यापन किया था—यह देखते ही बनता है, उसी समय आपने अपने अनुभवों में प्राणप्रिय श्रीश्यामाश्याम के लीला बिहार का गायन किया है। साथ ही उनके चरणों में बार-बार प्रार्थना करते हुए अभिलाषा भी प्रकट की है कि मुझे इन निकुंजों में ही सदा-सदा के लिये वास मिले। उनके ब्रजभाषा पद यहाँ दिये जारहे हैं। हिन्दी-उर्दू मिश्रित कविता से इसी ग्रन्थ के अगले शीर्षक–' ब्रजरसमाधुरी की सूक्तियों' में देंगे :– देखिये, उनके एक पद में वृन्दावन वास की तीव्र अभिलाषा, श्रीराधे के चरणों में प्रार्थना कर वे कह रहे हैं कि इस ब्रज में कीट-पतंग तक चाहे जो कुछ भी बनादो, जड़-जंगम कुछ भी, परन्तु ब्रज का वास दे दो :—

राधे ! सुनों नहीं किन मोर ।
वृथा जात यह काल स्वामिनी, हेरौ दया की कोर ।।
श्री वृन्दावन रज कणु-अणु तृण, खग मृग कीरी मोर ।
कोट, पतंग, स्वान, खर, सूकर, मरकट भृङ्ग चकोर ।।
लता पता द्रुम पल्लव शाखा, बेलि फूल फल बोर ।
वापी कूप सरोरुह पोखर, या जो चाहो ओर ।।
खार छार कछु होहुँ किशोरी, पुनि पुनि यही निहोर ।
ज्यों त्यों श्री वन कोन कचोने, परी रहौं निशि भोर ।।

जड़ जङ्गम चैतन्य सो भावन, ये ही काम कठोर।
ललित माधुरी पान करो नित, निरखों जुगल किशोर॥

वे वृन्दावन की एक-एक बात के लिये, एक-एक जीवनी के लिये जैसे तरस रहे हैं, और नहीं तो भृङ्ग ही बन जाना चाहते हैं :—

हों न भई वृन्दावन भृंग।
पद रज तल मकरन्द विहारिन, दिन प्रति लहिती सुरस अभंग॥
वाही रस मदमाती भ्रमती फिर फिर परती पगन उमंग।
ललित माधुरी कमल चरन सों, लिपटी गुपटी करती उछंग॥

जड़ पदार्थों में वे कोई महत्व का स्थान नहीं लेना चाहते, वे तो कुंज-निकुंज की 'रज' बन जाना चाहते हैं, हालांकी व्रज 'रज' की महिमा ही सर्वोपरि है, वह तो ब्रह्मादि देवों से भी वंदित है, पूज्य है, अभिलसित है :—

हों न भई रज कुञ्ज ललित वन।
पद पंकज प्रिय कुँजबिहारी, लसि रहिती अति हीं सुमुदित मन॥
सज जोरी नव लाल किशोरी, जब मुख मेलि निहारती दर्पन।
ललित माधुरी दीठि निवारन, लै मुहि वारि डारती सखिजन॥

भक्त के हृदय की भावनायें उमड़ रही हैं, व्रजवास चाहिये, चाहे कुछ भी बना दो, कभी वे सोचते हैं,यदि किशोरी जी मुझे इस वृन्दावन की कोई लता बना देते तो क्या ही आनंद रहता प्रिया-प्रियतम उस लता के नीचे लुकते-छिपते क्रीड़ा करते, कभी थक कर विश्राम करते। उस समय युगल किशोर के मुखकमल पर श्रम-बिन्दुओं को अपनी लता-पताओं की बयार से सुशीतल बना देते ? मेरे सौभाग्य का उस समय कितना मान होता :—

हों न भई वन मृदुल लतारी।
द्वै कर भजत परोसत अंगन, भक्ति झपटत लपटत पिय प्यारी॥
श्रमित भये विश्राम लेत दोउ, दे भुज ग्रीव टेक मोड़ारी।
ललित माधुरी श्रमकण निवरन, लहकि सुपातन करत बयारी॥

नीचे के तीनों पदों में श्रीललित किशोरीजी ने श्रीवृन्दावन धाम का वास और सखियों के यूथ के साथ नव-निकुंजों में श्रीप्रिया-प्रियतम के चरणों की अनुराग भरी सेवा की कामना ही की है :—

प्यारी मोहि दीजै श्री वृन्दावन वास।
छिन प्रति नव अनुराग बढ़त जहँ, भक्त प्रेम रस रास॥
अटि वन वीथिन मगन रहौं, मन मिलन जुगल दृढ़ आस।
ललित माधुरी दरस सुधाविन, मरत हैं लोचन प्यास॥

× × × ×

कब इन दृगन निकुँजनि हेरौं ।
सखियन जूथ लाडिली के संग, नन्द किशोर कुँजन घेरौं ।।
झटपट झपट लपट नागर नट, देकर कूक स्वामिनी टेरौं ।
ललित किशोरी तृण लालन मुख, दै राधे के पायन गेरौं ।।

* * * *

नैनन कबै निकुँज देखिहौं ।
यक पग जावक लाल लगावत दूजे, पग हौं चित्र रेखिहौं ।।
प्यारी अनखि झटकि प्यारे सों, देत मोहि निजभाग पेखिहों ।
ललितकिशोरी चरन चूमि हरि चिरियाँ करि २ लेत लेखिहौं ।।

गौड़ीय सम्प्रदाय के इन महानुभावोंने ब्रजरस सागर में अवगाहन कर जीवन मूल्यों का श्रेष्ठतम आनन्द अनुभव किया है, ऐसे महानुभावों की वाणियों की एक लम्बी शृङ्खला है, किन्तु ग्रन्थ विस्तार से सभी को यहाँ देना संभव नहीं है, इसके लिये न तो समय है, और नहीं साधन ही हैं। इस सम्प्रदाय के ब्रजरस के गायक वाणीकारों की संख्या लग-भग दो सौ बताई जाती है। कासगंज (ऐटा) डिग्री कालेज में हिन्दी के अध्यक्ष डा० श्री नरेशचन्द्र जी वंसल ने एक ऐसा संकलन तैयार किया है, जिसमें गौड़ीय सम्प्रदाय से सम्बन्धित सभी वाणीकारों का उल्लेख हुआ है।

गौड़ीय सम्प्रदाय की रस उपासना या माधुर्य भक्ति के प्रकरण को यहीं विश्राम दिया जाता है। आगे के पृष्ठों में रसिकों की स्फुट सूक्तियां संकलित कर रहे हैं, रस प्रेमियों को इससे अवश्य ही आनन्द मिलेगा।

ब्रज-रस-माधुरी की स्फुट सूक्तियाँ

ब्रजरस एक ऐसी मिठाई है कि इसके आस्वादन को हर एक का जी तड़फता है, कोई गाता है, कोई सुनता है और कोई गाता-सुनता दोनों है। कई लोग इसके अनुभव में डूबे रहते हैं तो कई इसकी तरङ्गों पर तैरते रहते हैं, जब जहाँ—जिसको जैसा कुछ मिला, जैसा कुछ देखा-सुना, बस गा चला और पागल होगया, बौरा गया। यहाँ जाति, कुल, धर्म, सम्प्रदाय, परम्परा, मर्यादा, लाज-शर्म सभी डूब जाते हैं। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई के टाइटिल फाड़कर फैंक दिये जाते हैं और हिन्दी, उर्दू, इंगलिश की वकालत यहाँ चलती नहीं। यहाँ तो प्रभु का प्यारा होना चाहिये वह चाहे जिस वेश में, जिस चाहे देश में, जिस चाहे जाति में,चाहे जिस धर्म में हो। आइये कुछ ऐसे ही रसिकों की वाणियों का आप को आस्वादन करावें, सर्वप्रथम रसिकवर्य श्रीरसखान जी के कुछ नमूने देखिये :—

मानुष हौं तौ वही रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन ।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरौ चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन ।।

पाहन हौं तौ वही गिरि कौ, जो धरयौ कर छत्र पुरन्दर-कारन।
जो खग हौं तौ बसेरौ करौं मिलि, कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

* * * *

या लकुटी अरु कामरिया पर, राजतिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि कौ सुख, नन्द की गाय चराइ बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक ही कलधौत के धाम, करील की कुञ्जन ऊपर वारौं॥

* * * *

कानन दै अँगुरी रहिबो, जबहीं मुरली-धुनि मन्द बजैहै।
मोहिनी तानन सों रसखानि, अटा चढ़ि गोधन गैहै तौ गैहै॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगन, काल्हि कोऊ कितनौं समुझैहै।
माई री वा मुख की मुसुकानि, सँभारि न जैहै न जैहै न जैहै॥

* * * *

आजु री नन्द लला निकस्यौ, तुलसी वनतें बनकैं मुसकातौ।
देखे बनै न बनै कहते अब, सो सुख जो मुख में न समातौ॥
हौं रसखानि बिलोकिवे कों, कुल कानि को काज कियो द्विय हातौ।
आय गई अलबेली अचानक, ऐ भटु लाज कौ काज कहा तौ॥

* * * *

ब्रह्म में ढूँढ़्यौ पुरानन गानन, बेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहुँ न कितै, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि परयौ, रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरयौ वह कुञ्ज-कुटीर में, बैठ्यौ पलोटत राधिका पायन॥

* * * *

जा दिन तें निरख्यौ नंदनन्दन, कानि तजी घर बन्धन छूट्यौ।
चारु बिलोकन की निसि मार, सँभार गई मग मारन लूट्यौ॥
सागर कहँ सरिता जिमि धावति, रोकि रही कुलको पुल टूट्यौ।
मत्त भयौ मन संग फिरै, रसखानि सुरूप सुधा रस घूट्यौ॥

रसखान के ही एक दूसरे भाई रसिकवर रहीम भी बड़ी मस्त तबियत के दिखाई देते हैं, देखिये क्या ही कमाल से उन्होंने उस नटवर नन्दकिशोर की छबीली छवि का किस शान से वर्णन किया है:—

शरद निशि निशीथे चाँद की रोशनाई,
सघन वन निकुञ्जे कान्ह बंशी बजाई।
रति, पति, सुत, निद्रा साइयाँ छोड़ भागी,

मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥१॥
कलित ललित माला लाल जवाहर जड़ा था,
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था।
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला,
अलिबन अलबेला यार मेरा अकेला ॥२॥
दृग छकित छबीली छेलरा की छरी थी,
मणि जटित रसीलो माधुरी मूँदरी थो।
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा,
कहि न सकी जैसा श्याम का हस्त देखा ॥३॥
कठिन कुटिल काली देख दिलदार जुलफें,
अलि कलित विहारी आपने जी की कुल फें।
सकल शशि कला को रोशनी-हीन लेखौं,
अहह ब्रज लता को किस तरह फेर देखौं ॥४॥
जरद वसन वाला गुलचमन देखता था,
झुक-झुक मतवाला गावता रेखता था।
श्रुति युग चपला से कुण्डलें झूमते थे,
नयन कर तमाशे मस्त हो घूमते थे ॥५॥
तरल तरनि सी हैं तीर सी नौकदारें,
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारें।
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखैं,
विलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखें ॥६॥
भुजग जुग किधौं हैं काम कंमनैत सोहैं,
नटवर! तव गोहैं बाँकुरी मान भौंहैं।
सुनु सखि मृदुवानी वेदुरुस्ती अकिल में,
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में॥७॥
पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ,
असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ।
इति बदति पठानी मन्मथाङ्गी विरागी,
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥८॥

* * * *

छवि आवन मोहन लाल की।
काछिनी काछे कलित भुरलि कर, पीत पिछौरी साल की ॥

बंक तिलक केसर कौ कीनें, दुति मानौं बिधु बाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मनतें, चितवन नयन बिशाल की॥
नीकी हँसनि अधर सुधरनिकी, छवि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर, डोलनि मुकता-माल की॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि, बोलनि मदन गुपाल की।
यह सुरूप निरखै सोइ जानैं, या 'रहीम' के हाल की॥

एक मुगलानी ताज बेगम वृन्दावन आगई, और उसने उसकी रूप माधुरी की एक छटा को देख लिया, बस फिर क्या था, सांवले कन्हैया की रूप माधुरी में छकी, अक-बकी-सी देखिये, क्या कहती है :—

छैल ओ छबीला सब रङ्ग में रंगीला बड़ा,
चित्त का अड़ीला कहूँ देवतों से न्यारा है।
माल गले सोहै नाक मोती सेत जो है कान,
कुण्डल मन मोहै लालमुकट सिर धारा है॥
दुष्ट जन मारे सब सन्त जो उबारे 'ताज'
चित्त में निहारे प्रन-प्रीति करन वारा है।
नन्द जू का प्यारा जिन कंस को पछारा वह,
वृन्दावन वाला कृष्ण साहब हमारा है॥

* * * *

सुनौ दिल जानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं निवाज हूं भुलानी तजे,
कलमा कुरान सारे गुननि गहूँगी मैं॥
साँवला सलौना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै दहूँगी मैं॥
नन्द के कुमार कुरबान तेरी सूरत पै,
हौं तौ मुगलानी हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं॥

कविवर नजीर भी इस रस से अछूते नहीं रह सके, उनकी नजीर भी सुनिये :—

यारो सुनो ये दधि के लुटैया का बालपन,
औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन।
मोहन सरूप नृत्य करैया का बालपन,
बन बन के ग्वाल गौवें चरैया का बालपन।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥

कारेखां वह भक्तराज था जिसने ठाकुर मदनमोहन को करौली (स्टेट) में प्रकट कर लिया और अपने मृत पुत्र को यह कह कर भगवान से प्राण-दान दिलवा दिया कि मैंने अपनी जाति के लोगों से वायदा किया है कि हिन्दुओं का ठाकुर मृत में भी प्राण फूँक देता है :—

वृन्दावन कीरति विनोद कुञ्ज कुँजन में,
आनन्द के कन्द लाल मूरति गुपाल की।
कालीदह 'कारे' पताल पैठि नाग नाथ्यौ,
केतकी के फूल तोरि लाये माला हार की॥
परसत ही पूतना परम गति पाय गई,
पलक हीं पार पारचौ अजामिल नार की।
गीध गुन गानहार छाँछके उगान हार,
आई न अहीर! क्या हमारी बार-बार की॥

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री 'देव' सब कुछ कहने के बाद जब वे इस रस-माधुरी की ओर झुके तो उन्होंने वर्णन में सजीव चित्र खड़ा कर दिया, उनके कुछ छन्द हम यहाँ रस प्रेमियों के लाभार्थ दे रहे हैं :—

कोऊ कहौं कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौं रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं।
कैसौ नर लोक पर लोक बर लोकन में,
लीन्ही मैं अलीक लोक-लीकन ते न्यारी हौं॥
तन जाउ मन जाउ, 'देव' गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावन वारी बनवारी की मुकट वारी,
पीत पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं॥

* * * *

वोरयो वंस विरद मैं बौरी भई बरजत,
मेरे बार-बार बीर कोई पास पैठोजनि।
सिगरी सयानी तुम बिगरी अकेली हौं ही,
मोहन मैं छाँड़ौं मोसों भौंहनि उमैठौ जनि॥
कुलटा कलंकिनी हौं कायर कुमति कूर,
काहू के न काम की, निकाम यातें ऐंठौ जनि।
'देव' तहाँ बैठियत जहां बुद्धि बढ़ै हौं तो,
बैठी हौं विकल कोऊ मोहि मिलि बैठौ जनि॥

* * * *

भेंटि भुज भुजन समेटि उर सों जु उर,
अधर अधर धरे अधिक अधीर की।
जोरि अंग-अंग सों लचाइ गुलचाइ भाल,
दीनी लाल बेंदी बोरि खैंचकै अबीर की॥
'देव' दुःख भंजन लला के दृग-खंजन में,
अंजन की लीक पीक-पलक लकीर की।
तन मन-वारी बनवारी की बनक पर,
चंद बलिहारी बलिहारी बलवीर की॥

* * * *

पाँयन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि में धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट षीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुख चन्द्र जुन्हाई।
जै जगमंदिर दीपक सुन्दर, श्रीब्रज दूलह 'देव' सहाई॥

* * * *

कुँजन के कोरे मन केलि रस बोरे लाल,
तालन के धोरे बाल आवति है नित को।
अमिय निचोरे काल बोलति निहोरे नेंकु,
सखिन के डोरे 'देव' डोलै जित-तित को॥
थोरे-थोरे जोबन विथोरे देति रूप-रासि,
गोरे मुख भोरे हँसि जोरे लेति हित को।
तोरे लेति रति-दुति मोरे लेति मति, गति,
छोरे लेति लोक लाज चोरे लेति चित को॥

रसिकवर बिहारी कवि का नाम आज विश्व विख्यात है, बिहारी सतसई में उन्होंने श्रीराधा कृष्ण की जिस दिव्य झांकी का दर्शन कराया है, वह अनुपम है, नमूना के तौर पर उनके ब्रजरस भरे कुछ दोहे यहाँ दिये जारहे हैं :—

किती न गोकुल कुल बधू, काहि न केहि सिख दीन।
कौने तजी न कुल गली ह्वै मुरली सुर लीन॥
मन मोहन सों मोह करि, तू घनश्याम निहारि।
कुँज बिहारो सों बिहरि, गिरिधारी उर धारि॥
मेरी भव बाधा हुरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, श्याम हरित दुति होय॥
सोन जुही सी होति दुति, मिलति मालती-माल।

देखी सोन जुही फिरत, सोन जुही से अंग।
दुती लपटनु पट सेत हूं, करत बनौठी रंग॥
अधर धरत हरि के परति, ओंठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष रंग होति॥
मोर मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उरमाल।
यहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारी लाल॥

इसी शृङ्खला के कवि 'मतिराम' भी काव्य जगत मे सुप्रसिद्ध हैं, उन्होंने भी शृङ्गार-रस की ब्रजरस संबंधी गरिमा को बड़े जोखम के साथ नापा-तोला है शब्द, भाव और व्यञ्जनाओं का आनन्द उनकी कविता में लीजिये :—

अञ्जन दै निकसै नित नैननि, मंजन कै अति अङ्ग सँवारे।
रूप-गुमान-भरी मग में पग ही के अँगूठा अनौठ सुधारे॥
जोवन के मद सों 'मतिराम' भई मत वारिन लोग निहारै।
जात चली यहि भांति गली, बिथुरी अलकैं अचरान सँभारे॥

* * * *

आई हौं पाँइ दिवाय महाउर कुञ्जन ते करिकै सुख सेनी।
साँवरे आजु सँवारो है अंजन, नैनन को लखि लाजत ऐनी॥
बात के बूझत ही 'मतिराम', कहा करती भटू भौंह तनेनी।
मूँदी न राखति प्रीति अली यह गूँदी गोपालके हाथकी बेनी॥

* * * *

केलि कै रति अघाने नहीं, दिन हू मैं लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोउ पानी दै जाउ यां भीतर बैठि के बात सुनाई॥
जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरे 'मतिराम' बुलाई।
कान्ह के बोल मैं कान न दीन्हों, सुगेह की देहरी लांघ आई॥

* * * *

क्यों इन आँखिन सों निरसंक ह्वै मोहन को तन पानिप पीजै।
नेकु निहारे कलंक लगै, इहि गांव बसे कहु कैसेक जीजै॥
होत रहैं मन यों 'मतिराम' कहूँ बन जाइ बड़ो तप कीजै।
ह्वै बनमाल हिए लगिए अरु ह्वै मुरली अधरा रस लीजै॥

* * * *

गुच्छन को अवतंस लसै सिखि पच्छन अच्छ किरीट बनाओ।
पल्लव लाल समेत छरी, कर पल्लव मो 'मतिराम' सुहायो॥
गुंजन को उर मंजुल हार निकुंजन ते कढ़ि बाहर आयो।
आजु को रूप लखै ब्रजराज को, आजु ही आँखिन कौ फल पायौ॥

और कविवर 'केशव' की रसिकता से कौन परिचित नहीं है। भगवद्लीला गुणगान में वैसे उन्होंने भगवान श्रीसीतारामजी के दिव्य चरित्र का गुणगान किया है। परन्तु वे मुरली मनोहर श्रीकृष्ण और वृषभानुलली किशोरी श्रीराधा के दिव्य-रस वर्णन में भी पीछे नहीं रहे, देखिये—किस खूबी से मदमाते भावों में वर्णन हुआ है :—

भांति भली वृषभानु लली जब सों अँखियान सों जोरी।
भौंह चढ़ाइ कछु डरपाइ बोलाइ लई हँसिकै इत भोरी॥
'केशव' क्यों हूँ सुता दिन ते रूचि कै न निहारत केति निहोरी।
लीलत है सबही के सिंगार अँगारन ज्यों बिन चंद चकोरी॥

* * * *

तोरि तनी टक टोरि कपोलन, जोरि रहे कर हौं न रहौंगी।
पान खवाइ पिआइ सुधा रस, पाँइ गहे तस हौं न गहौंगी॥
'केशव' चूकन दे फिर मोहि कै, मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी।
कै मुख चूमन दै फिर मोहि कै आपनी धाइ सों जाइ कहौंगी॥

प्रिया-प्रियतम के मिलन की एक अन्तरङ्ग दशा का वर्णन। जहाँ किसी को प्रवेश पाने का अधिकार नहीं, परन्तु 'केशव' कवि अन्तरङ्ग सखी के वेश में अन्तर्महल में पहुँच गये, उत्सुक श्याम सुन्दर को निवारण करती प्रिया के भावों को देखिये :—

चंबल न हूजै नाथ, अंचल न खैंचो हाथ,
सोवै नीके सारिकाउ सुक तो सोवायो जू।
मन्द करौ दीप-दुति चन्द मुख देखियतु,
दौरिकै दुराय आऊँ द्वार ते दिखायो जू॥
मृगज मराल बाल बाहिरै बिड़ारि देउ,
भायौ तुम्हें 'केशव' सु मोहूँ मन भायो जू।
छल के निवास ऐसे बचन-विलास सुनि,
सौगुनो सुरति हू ते श्याम सुख पायो जु॥

अधर पल्लव के रसामृत पान के आगे समस्त सुधा-रस फीके पड़ गये हैं, इस रसके आगे संसार में किसी भी मिठाई में मिठास रहा ही नहीं है :—

सारिका खात न माखन दाखन दाड़िम हू सह मेटि इठाई।
'केशव' ऊख मयूखहु दूखत आई हौं तो यहँ छोड़ि जिठाई॥
तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गये करि केहूँ ठिठाई।
ता दिन ते उन राखी उठाइ समेत सुधा बसुधा की मिठाई॥

लेकिन अन्त में वे एक कठोर चेतावनी भी दे रहे हैं, जो वास्तव में ध्यान में रखने योग्य है :—

पेट चढ्यो पलना पलिका चढ़ि पालकि हू चढि मोद मढ़्यो रे।
चौक चढ़यौ चितसारी चढ़यौ गज बाजि चढ्यो गढ़ गर्व गढ़्यो रे॥
व्योम बिमान चढ़्योई रहै, कहि 'केशव' सो कबहूँ न पढ़्यो रे।
चेतत नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त सु चाहत मूढ़ चिता हू चढ़्यौ रे॥

भारतेन्दु बाबूहरिश्चन्द्र का नाम किसने नहीं सुना होगा, वे एक श्रेष्ठ कवि तो थे ही, साथ ही युगल सरकार प्रिया-प्रियतम श्रीश्यामाश्याम चरणारविंद के परम अनुरागी भी थे, आपने व्रजभाषा में सुन्दर कवितायें लिखी हैं, अपने समय के ख्याति प्राप्त विद्वान एवं भावुक रसज्ञ बाबू हरिश्चन्द्र जी का रसिक समाज में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपना परिचय स्वयं ही एक कवित्त में दिया है :—

सेवक गुनी जन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे महा बाँके हम बाँकेन सों,
'हरिचन्द' नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिवे की चाह काहू की न परवाह नेही,
नेह के दिवाने सदा सूरत निमानी के।
सरबस रसिक के दास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के॥

* * * *

देखि घनश्याम घनश्याम की सुरति करि,
जिय में विरह-घटा घहरि-घहरि उठै;
त्यों ही इन्द्रधनु बगमाल देखि बनमाल,
मोती लर पी की जिय लहरि-लहरि उठै।
'हरिचन्द' मोर-पिक-धुनि सुनि वंशी-नाद,
बाँकी छवि बार-बार छहरि छहरि उठै।
देखि-देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत-
पट-छोर मेरे हिय फहरि-फहरि उठै॥

* * * *

जोगिन मुख पर लट लटकाई।
कारी घूँघर वारी प्यारी देखत सब मन भाई॥
छूटे केस गेरुआ बागे सोभा दुगुन बढ़ाई।
साँचे हरी प्रेम की मूरति अँखियां निरखि सिराई॥

* * * *

हम तौ मोल लिये या घर के।
दास दास श्री वल्लभ-कुलके चाकर राधावर के॥

माता श्री राधिका पिता हरि बन्धु दास गुनकर के।
हरीचन्द तुम्हरे ही कहावत,नहिं विधि के नहिं हर के॥

* * * *

हम चाकर राधा रानी के।
ठाकुर श्री नन्दनन्दन के वृषभानु लली ठकुरानी के॥
निरभय रहत बदत न काहू ड़र नहिं डरात भवानी के।
'हरीचन्द' नित रहत दिवाने,सूरत अजब निवानी के॥

वे संसार के लोगों को माया भटियारी से सावधान रहने की खबर दे रहे हैं, वे कहते हैं, प्रभो! तुम्हारी माया ही विलक्षण है। भगवत-माया पर भारतेन्दु जी की कैसी "फबती" है:—

हरिमाया भटियारी ने, क्या अजब सराय बसाई है,
जिसमें आकर बसते ही, सब जग की मति बौराई है।
होके मुसाफिर सबने जिसमें, घर सी नींव जमाई है,
'भाँग पड़ी कुए में' जिसने, पिया बना सौदाई है।
सौदा बना भूर का लड्डू, देखति मति ललचाई है,
खाया जिसने वह पछिताया, यह भी अजब मिठाई है।
एक एक कर छोड़ रहे हैं, नित नित खेप लदाई है,
जो बचते सो यही सोचते, उनकी सदा रिहाई है।
अजब भँवर है जिनमें पड़कर, सब दुनियाँ चकराई है,
'हरीचन्द' भगवन्त भजन बिनु, हमसे नहीं रिहाई है॥

ब्रजरस के परम आस्वादक श्री नागरीदासजी ने ब्रज वृन्दावन की महिमा गाई है, वह सीधे हृदय में बैठ जाती है, देखिये :—

ब्रज सम और न कोऊ धाम।
या ब्रज में परमेसुर हू के, सुधरे सगरे नाम।
कृष्ण नाम इहि सुन्यों गरग तें, कान्ह कान्ह कहि बोलें;
बाल-केलि रस मगन भए सब, आनन्द-सिन्धु कलोलें।
जसुदा-नन्दन, दामोदर, नवनीत-प्रिय दधि चोर;
चोर चोर चित-चोर चिकनियाँ, चातुर नवल किशोर।
राधा चन्द-चकोर साँवरो, गोकुल चन्द दधि-दानी;
श्री वृन्दावन चन्द चतुर चित, प्रेम-रूप-अभिमानी।
राधा रमन सु राधा बल्लभ, राधा कान्त रसाल;
बल्लभ सुत, गोपी जन बल्लभ, गिरिवरधर छवि-जाल।
रास बिहारी रसिक बिहारी, कुञ्ज-बिहारी, श्याम.
विपिन बिहारी, बंक बिहारी, अटल विहार अभिराम।

गोपी नाथ, मदन-मोहन पुनि, वंशीधर गोविन्द;
छैल बिहारी, लाल बिहारी, बनवारी रसकन्द।

* * * *

व्रज-लोचन, व्रज-रमन मनोहर, व्रज उत्सव व्रजनाथ,
व्रज जीवन, व्रज वल्लभ सब के, व्रज किशोर सुभगाथ।
व्रज-भूषन, व्रज मोहन, सोहन, व्रज नाइक, व्रजचन्द,
व्रज नागर, व्रज छैल छबीले, व्रजवर श्री नन्द-नन्द।
व्रज-आनन्द, व्रज दूलह नित ही, अति सुन्दर व्रज लाल,
व्रज गौवन के पाछैं आछैं, सोहत व्रज गोपाल।
व्रज सम्बन्धी नाम लेति ये, व्रज की लीला गावै,
'नागरी दास' हि मुरली वारौ, व्रज कौ ठाकुर भावै॥

एक 'नारायण' रसिक कवि तो स्वयं सखी-सहचरी के वेश में व्रजरस का आनन्द लूट रहे हैं, व्रजगोपियों के साथ वे स्वयं भी माँ यशोदा के पास 'लाल' जी का उलाहना लेकर पहुँच गये हैं :—

सुनि लै जसोदा रानी। तू 'लाल' की बड़ाई।
सब लोक लाज वानैं, जमुना में धोइ बहाई॥
भोरहि जो मैं गयी री! जल भरि वे काज भैना;
पीछे सों आइ अचानक, उन मूँदे मेरे नैना।
डरपी मैं हाइ को है तब बोले टेढ़े-बैना;
हौं तौ रही इकेली, वा सङ्ग ग्वाल-सैना।
तब सब नैं हो हो करि कैं, तारी मेरी बजाई।
सुनि लै जसोदा रानी! तू 'लाल' की बड़ाई॥
हँसि हँसि कै छैल! मोसों करिवे लगौ ठठोली;
यह छवि तिहारे मुख की, अब कासों जावै तोली।
निरखै कभू बदन कों, कबहू छुवै दो चोली;
मैं तौ सकुच की मारी वासों कछु न बोली।
पुनि बहियाँ मेरी झटकी, गागर धरनि गिराई।
सुनि लै जसोदा रानी! तू 'लाल' की बड़ाई॥
ज्यों ज्यों कहौं मैं हटरे! त्यों त्यों ही दूनों अटकै!
मुसिक्यावै, दृग-मिलावै, भृकुटी-चलावै, मटकै।
करि करि कैं सैना-बैनी, तन परसै, चीर झटकैं;
अब और का कहौं मैं, गलहार ह्वै कैं लटकैं॥

इक संग बानैं ऐसी पकरी निलज्ज ताईः
सुनि लै जसोदा रानी ! तू 'लाल' की बड़ाई ।।
अँगिया के बन्द तोरैं, चूनर झड़ाक फारीः
दुलरी के निरखिवे कौं, गलबैयाँ मेरैं डारी ।
यह सब कुचाल देखैं, मग-ठाड़े पुरुष-नारीः
इतने पै नाम लै लै, मो कौं सुनाई गारी ।।
गुरुजन मैं मेरी बानैं, या बिधि करी हँसाई ।
सुनि लै जसोदा रानी ! तू 'लाल' की बड़ाई ।।
कबहुँ कहै बतारी ! तू क्यों इकेली आईः
का घर में तेरे पति की तोसों भई लराई ।
तू चल भवन हमारे, करि मोसों मित्रताईः
बिधिना नें तेरी मेरी जोरी भली बनाई ।।
बातें "नराइन" बाकी सुनिकैं मैं अति लजाई ।
सुनि लै जसोदा रानी ! तू 'लाल' की बड़ाई ।।

एक और ब्रज-रस कवि "शीतल" जी की कविता का आनन्द लीजिये :—

तुब चरण शरण में पड़े हुए, तेरे ही गुण को गुनते हैं ।
तुझ बिन यह जगत सुजान जीव, हम पड़े शीष को धुनते हैं ।।
निर्गुण-सगुण की लहर उठे, ताना बाना सा बुनते हैं ।
जानी! तुमको हम समझ लिया सब तज हरि भज सुनते हैं ।।

* * * *

सुनि लाल बिहारी ललित ललन, फूलों की गेंदैं खेलेगाः
सन्मुख यह देह निशाना है-दिलजान कहाँ तक पेलेगा ।
आँखों से आँखें भिड़ी रहें इस रूप रंग को झेलेगाः
यह मजा उसी को मिलता है, जो खाक शीश पै मेलेगा ।।

* * * *

जुग पलक झलक सो जला-रन्ध्र, वरुनी रेशम के जाले सेः
चितचोर तरल तीखी चितवन, सो अंकुश बलित संभाले से ।
दृग चाह डोर की लहर लगी, नेही खगपति का डाले सेः
मुख शशी पींजरे में लीये, दृग तीक्षण खंजन पाले से ।।

* * * *

गुण वारे अरुण जाल डोरे, दृग भरे हुए बेपीरी केः
पंकज पर दिन कर की किरणें, छींटे मन्मथ की बीरी के ।

कै है गुलाब में उदै हुए, अंकुर केसर कश्मीरी के;
खंजन के गल में पड़े हुए, गुच्छे दाड़िम-दल चीरी के ।।

* * * *

कारी सटकारी लहरदार, दिल देखत लग दीं अच्छी हैं;
दिया तेल, फुलेल, अतर आला, खुशबोई दे विच मच्छी हैं ।
ये निकसे श्रौन-बाँवई से, उपमा सब इनकी कच्ची हैं;
जुल्फें इस 'लाल-विहारी' की, क्या सिर्फ नागदी-बच्ची हैं ।।

* * * *

कारी सटकारी लहदार, छविदार अतर से पाली हैं;
मखतूल, नीलमणि, चंचरीक, उपमा के जी मैं साली हैं ।
कर साफ अतर से मुखड़े पर वे तरह पेचवां डाली हैं;
इस 'लाल-विहारी' की जुल्फें, मत छेड़ नागिनी काली है ।।

* * * *

बँबई-कानों से कढ़ी हुई, देखत ही चित में पैठी हैं;
मोती से निकलीं उरझ रहीं, चुन्नी ले मुख में ऐंठी हैं ।
नीलम के तार सिवार किधौं, छवि चंचरीक की मैंठी हैं;
जुल्फें इस 'लाल-विहारी' की, मणिदार नागिनी बैठी हैं ।।

* * * *

मखतूल, नील मणि, चंचरीक, सबकी उपमा को पेलें हैं;
मुख शरद-चन्द्र से लगी हुईं, क्या सम्बुल की सी बेलें हैं ।
लहराती हुई नजर आईं, दिल में जहरों की रेलें हैं;
रुखसार हेम के थालों पर, दो चढ़ी नागिनी खेलें हैं ।।

* * * *

कोई आँखों ने मार लिया, उसको नरगिसी वखानी है;
कोई जुल्फों के पेच तले, नागिन की कहे कहानी है ।
कोई हँसने के बीच विका, झम कानि रूप सुखदानी है;
आखिर को निश्चय हुआ नहीं, तेरा सा तू ही जानी है ।।

* * * *

कहते हैं जिसको ब्रह्मतत्व, अरु अज अनीह अबिनाशी है;
तीनों गुण, पाँचों तत्व परे सब विश्व रूप का वासी है ।
सुनि लाल बिहारी ललित ललन! यह बात चित्त में भासी है;
मुख शरद चन्द्र विश्वेश्वर सा, जानी विहँसन ही काशी है ।।

गिरदावचन्द्र का गोल किया, या मैन भूप की केली है;
या कमल-कर्णिका गिर्द पुञ्ज, यह भी उपमा सब पेली है।
दिल समझ-समझ चुप होता है, कविता की दिलवर बेली हैं;
मो मन मतंग के फंसने को, जानी की सुघड़ हथेली है॥

* * * *

कै पंचवाण की पंचकला, कै पारिजात की कलियाँ हैं;
कै अरुण-कली दल दाड़िम की, तिनकी उपमा दलमलियाँ हैं।
कंचन सरोज के दल पाँचों, कै साँचे को सी ढलिया हैं;
जानी की क्या ही अति 'शीतल' अँगुली चम्पे की कलियाँ हैं॥

* * * *

दल शरद-कंज के पांच खिले, दिलवर ! दाड़िम को कलियाँ सी.
कै पंचवाण के तरकश की, पाँचों कोरे रस रलियाँ सी।
कै पंच-शक्ति कंजासन से, ये कढ़ीं रमा की रलियाँ सी;
अँगुली पाँचों रस भींनी की, ये मदन वाण की कलियाँ सी॥

* * * *

नग चुन्नी चौके जड़े हुए, चम्पक-दल मंगल बैठे बन;
या पंच वाण ने तीरों की, नोंकों पर राखे आछे मन।
नख लाल पियारी के 'शीतल' क्या शरदन्चद्र कैसे कन;
या विमल कञ्ज की कलियों पर, जानी चढ़ि आये तारागन॥

* * * *

दीठि परी नन्द लालै कहूँ, वृषभानु लली की सु एकु कलाई;
ता छिन तैं तजि खान औ पान; सुहाइ ही हाइ यहै जकि लाई।
ऐसी दशा लखि कै उनकी, समुझायौ रसीले तवौ न कल आई;
घूँमत हैं ब्रज-वीथिन में, रट लाइ रहे हैं कलाई-कलाई॥

* * * *

सुन्दर सूधी सुगोल रची विधि, कोमलता अति ही सरसात है;
त्यों "हरिऔध" जराव जरे, खरे कंकन कंचन के दरसात है।
चूरी हरी बिलसैं जिहि मैं, तिहि देखि हियौ सबकौ हुलसात है;
ऐसी कलाई लखै बिकलाई भई, कल आई नहीं दिन रात है॥

* * * *

इतै राखौ चहै कुल की कुल-कानि, उतै नन्द-नंद नैं ध्यावती हैं;
निज-गैल में आनि कहूं जो कहूं, न झरोखन झाँकनि पावती है।

'कवि ठाकुर है न' बनाव कछू, दुविधा मिलि साँचु सँचावती है;
चहैं आसिकी औ डरु मायन कौ, कहौ द्वै-द्वै कहाँ बन आवती है ॥

* * * *

कानन दूसरौ नाम सुनैं नहिं, एक ही रंग रंग्यौ यह डोरौ;
धोखेंहुँ दूसरौ नाम कहै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरौ।
"ठाकुर" चित्त की वृत्ति यही,हम कैसेहुँ टेक तजैं नहिं भोरौ;
बावरी! वे अँखियाँ जरि जाँइ जो साँवरौ छाँड़ि निहारितीं गोरौ॥

—"ठाकुर"

* * * *

जात चली वृषभानु लली, हरि आइ गए दुपटी में छिपाइ कैं;
दै कुच पै पिचकारी छारक दै, हौ कहि जात रहे हिय लाइ कैं।
"गोकुल" खीझि कै रीझि रही कछु,चाह्यौ कह्यौ मुँह तै सतराइ कैं;
बोल कढ़ौ न गरौं गरुओ करि, हारि सी हेरि न फेरि लजाइ कैं॥

* * * *

नख कहाँ लागे ? बन-बनरा लगाए नख,
चख क्यों राते ? प्रात देख्यौ तातैं भान कौ,
चंदन लगायौ कहाँ ? विघन-हरन पूजा करी,
बन्दन लग्यौ है कहाँ ? परस भयौ थान कौ॥
रैन में रहे कहाँ ? नट निरतत जहाँ,
अरबरे-बोलौ क्यों ? डर भयौ आन कौं;
गुजरी सो गुजरी अब आगें आइ ठाडे 'सूर"
थेगरी कहाँ लौं देत फाटे असमान कौ॥

* * * *

भोर हीं न्यौंत गई ही तुम्हें !, वह गोकुल-गाँव की ग्वालिन गोरी;
आधिक राति लौं "बैनी-प्रवीन," कहा ढिग राखि करी वरजोरी।
आवै हँसी हमें देखत लाल ! सुभाल में दीन्हौं महावर घोरी;
एते बड़े ब्रज-मंडल में, न मिली कहूँ माँगेहूँ रंचक रोरी॥

श्रीउद्धव जी के ब्रज पहुँचने पर ब्रज-गोपियोंने चित्त में चुभने वाली फड़कीली जो फब्तियाँ कसी हैं, उनका उत्तर उद्धव न दे सके—श्रीकृष्ण के पास तो कोई उत्तर था ही नहीं, देखिये कुछ कवियों ने अपनी वाणी में कैसे भाव व्यक्त किये हैं :—

उधौ के आवत उठि धाईं ब्रजवाल सबै,
श्याम को सन्देसो कछु कहोगे रसम को।

कुबजा कों त्यागी कि त्यागन हमारो कियो,
गोकुल में बसागे कै वसिवो वहाँ चसम को ॥
पाती में पठायो ताहि मुख ही मुख पाठ करो,
खर्च हू पठायो कछु व्याकुल जतन को।
शृङ्गी सेली लै अलवेलिन के आगे धरी,
लेउरी भसम खर्च आयौ है खसम को ॥

* * * *

ऊधौ वे ऐसी करत जैसी न कोई करै,
हम सों अनरीति प्रीति चेरी सों बढ़ाई है।
सुधा-सी मिठाई छांड़ि चाखत हैं विषम कन्द,
ऐती निठुराई कहौ कौन ने बताई है ॥
आपु करैं राजभोग हमको लिखि भेजें जोग,
मथुरा की गद्दी का उनहीं कूँ सुहाई है।
ऊधौ जी हरि सों न्याव इतनौ कराइ दीजै,
कि जीवत खसम के भसम काहू ने रमाई है ॥

* * * *

आवत उसासी दुःख लागै औ हाँसी सुनि–
दासी उर लाइ कहौ को नहिं दहा कियौ;
कहै "पद्माकर" हमारे जानि ऊधौ ! उन–
तात कौ न मात कौ, न भ्रात कौ कहा कियौ ?
कंगिलिन कूबरी, कलंकिनी, कुरूप, तैसी –
चेटकनि चेरी ताके चित्त कौ चहा कियौ;
राधिका की कह बात कहि दीजे मन मोहन सौं;
रसिक - शिरोमनि कहाइ धौं कहा कियौ ॥

निभृत-निकुंज की लीलाओं का आनन्द भी लीजिये। 'पद्माकर' और 'हठी' ने कैसे सुन्दर दिव्य भावों को व्यक्त किया है :—

घर न सुहात न सुहात वन वाहिर हूँ,
बाग न सुहात जे खुशाल खसवोई सों।
कहै 'पदमाकर' घनेरे धन धाम त्यों ही,
चन्द न सुहात, चांदनी हूँ जग जोई सों ॥
सांझ न सुहात न सुहात दिनमांझ कछु,
व्यापी यह बात सो बखानत हौं तोई सों।

राति न सुहात न सुहात परभात आली,
जब मन लागि जात काहू निरमोई सों ।।
को हो? ज्योतिषी हो, कछु आगम वखानत हो,
धाम धाम नाम जग जाहिर हमारो तो ।
आवो,बैठि जावो,पग धुवावो,पान खावो फेरि,
शुचिते सुचित्त दै कै गनित निकारो तो ।।
'ठाकुर' कहत यह प्रेम की परिच्छा जानि,
इच्छा को प्रमाण भली भांति निरधारो तो ।
मेरो मन मोहन सों लागत है बार बार,
मोहन को मौसों मन लागि है विचारो तो ।।

* * * *

उद्धव एक संदेसौ यहै, कहि देउ तौ बात सयानी करौ,
कूबरी कौं ठकुरानी करी तौ, भलैं अपनी मनमानी करौ ।
पै "कवि ग्वाल" मुनासिव और हूँ, सोहू जरूर प्रमानी करौ,
लाँगुरी लुलिन आंधरी कानिन रानिन में पटरानी करौ ।।

* * * *

प्रीति कुलीननि तैं निबहै, अकुलीन की प्रीति में अन्त उदासी,
खेलत खेल गयौ अबहीं, हमें जोग पठाइ बन्यौ अविनासी ।
त्यों "कवि ग्वाल" विरंचि विचारिकैं, जोरी जुराइ दई अति खासी,
जैसोई नन्द कौ पालक कान्ह, औ तैसीय कूबरी कंस की दासी ।।

* * * *

नन्द कौ पालक हो पहिलैं, अब कंस की चेरी को चेरौ भयौ,
ताकौ परेखौ कहा करिये सखि ! लाखन वार कौ हेरौ भयौ ।
त्यौं "कवि ग्वाल" करै तौ कहा, वह साँपिन सौत कौ घेरौ भयौ,
नेह छली मन मोहन कौ, हमकौं सखी ! भूत कौ फेरौ भयौ ।।

* * * *

चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु, दई पहिराइ सुनाइ जु होरी,
बैंदी बिसाखा रची 'पद्माकर" अंजन आँजि समाज कै रोरी ।
लागी जबै ललिता पहिरावन, कान्ह कौं कंचुकी केसर बोरी;
हेरि हरैं मुसिकाइ रही, अँचरा मुख दै वृषभानु-किशोरी ।।

* * * *

आजु हौं गई ही बोर ! सहज निकुँज माँहि,
कौतुक विलोक्यौ तहाँ सब सुख दानी के;
कहत बनैं न मो पै अचरज बात 'हठी'
कहि-कहि हारे मुख चार बेद बानी के ।।

स्रवन सुन्यौ न मानैं आँखिन दिखाऊँ तोहि,
चलि दुरि मेरे संग चरित गुमानी के।
लूटैं सुख मोटैं, करैं मनुहारि कोटैं, बैठ्यौ—
पाइन पलोटैं लाल ! राधा महारानी के॥

* * * *

फिरत कहा है बीर ! बावरी भई सी तोहि—
कौतुक दिखाऊँ चलि परैं कुंजद्वारी के।
निमिष निहारैं, ढ़ीठि कतहूँ न टारैं, मारैं—
नंद कौ कुमार नैंन सैन सुकुमारी के॥
करन पसार करि हगन लगावै "हठी",
बस परयौ गरबीली ग्वालि सुकुमारी के।
आई देखि हौं हूँ और दिखाऊँ चलि तोहि लाल—
चरन पलोटैं वृषभानु की दुलारी के॥

* * * *

गोकुल की गैल-गैल, गैल गैल ग्वालन की,
गोरस के काज लाज - बस कै बहाइबौ।
कहै 'रत्नाकर' रिझाइबौ नवेलिनि कौं,
गाइबौ गवाइबौ औ नाँचबौ नँचाइबौ॥
कीबौ श्रमहार मनुहार कै विविध-विधि,
मौहिनी मृदुल मंजु बाँसुरी बजाइबौ।
ऊधौ ! सुख संपति - समाज ब्रज-मंडल के,
भूलैं हूँ न भूलै, भूलै, हमकौं भुलाइबौ॥

* * * *

पहले ही जाइ मिले गुन में श्रवन फेरि,
रूप सुधा मध्य कियो नैनहू पयान है।
हंसनि नटनि चितवनि मुसकानि सुघराई,
रसिकाई कन्हाई करि महती पय पान है॥
मोहि - मोहि मोहनमयी री मन मेरो भयो,
'हरीचंद' भेद न परत पहचान है।
प्रान भये कान्हमय कान्हभये प्रानमय,
हियमें न जान्यौ जाय प्रान है कि कान्ह है॥

* * * *

शेष, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर ध्यावैं,
जाहि अनन्त अनादि अखंड, अछेद, अभेद, सुवेद बतावैं।
नारद सौं सुक व्यास रटैं, पचिहारे तऊ पुनि पार न पावैं,
ताहि अहीर की छोहरियाँ! छछिया भरि छाछ पै नाँच नचावैं॥

गावैं गुनी गनिका गंधर्व औ सारद सेस सबै गुन गावैं;
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों, ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावैं।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगावैं;
ताहि अहीर की छोहरियाँ! छछिया भरि छाछ पै नाँच नचावैं॥

* * * *

एक दिना श्रीराधामोहन, पौढ़े हुते दोऊ एक ही भौंने।
श्याम कही आवौ मेरी ओरै, राधा कही यह बात न हौंने॥
सांवरी होऊंगी सांवरे संगते, बाबरि! बात बताई है कौंने।
सौने को रंग कसौटी चढ़ै, पै कसौटी को रङ्ग चढ़ै नहिं सौंने॥

* * * *

अहो विधना! तोसों अँचरा पसार मांगौं,
जनम-जनम दीजो मोहि याही ब्रज बसिवौ।
अहीर की जाति समीप नन्द घर,
हेरि हेरि स्याम सुभग, घरी घरी हँसिवौ।
दधि के दान मिसि ब्रज की वीथिन—
झक झोरन अङ्ग-अङ्ग कौ परसिवौ।
"छीत-स्वामी" गिरिधरन श्री विट्ठल,
शरद रैन रस रास बिलसिवौ॥

* * * *

माई री! स्यामा, श्याम श्याम रटति श्यामा-श्याम भई।
अपनी सखिन सों पूँछति डोलति, श्यामा कहाँ गई॥
ब्रज बीथिन में ढूँडति डोलति, बोलति राधे-राधे।
रही बिचारि निहारि सोच करि, सीख सकल मन साधे॥
प्रेम लगन जाके मन लागै, ताहि कहौ सुधि कैसी।
कहि 'भगवान हित राम राय' प्रभु, लगन लगै जब ऐसी॥

* * * *

गहिबौ अकास, पुनि लहिबौ अथाह थाह,
अति विकराल व्याल काल कौ खिलाइबौ।
सेर समसेर-धार सहिबौ प्रवाह-बान,
गज मृगराज द्वै हथेरिन लराइबौ।
गिरि तें गिरनु ज्वाल-माल में जरनु और—
कासी में करौट, देह हिम मैं गराइबौ।
पीबौ विष विषम कबूल 'कवि नागर' पै—
कठिन कराल एकु नेह कौ निभाइबौ।

मां यशोदा की कल्पनायें भी अद्भुत हैं वे अपने लड़ैते लाल के लिये कैसी कैसी मनौती मना रही है, आलम कवि के शब्दों में सुनिये और नीचे एक कवित में माता की फटकार भी देखने लायक है :—

दै हौं दधि मधुर धरनि-धरचौ छोरि खैहै,
धाम तै निकसि धौरी धेनु धाइ खोलि है।
धूरि लोटि ऐ है लपटै है लटकत ऐ है,
सुखद सुनै है बेनु बतियाँ-अमोलि है।
'आलम सुकवि' मेरौ ललन चलन सीखै,
बलन की बाँह ब्रज-डालिन में डोलि है।
सुदिन, सुदिन-दिन ता दिन गिनौगी माई!
जा दिन कन्हैया मोसों मैया! कहि बोलि है॥

* * * *

च्यौं रे बजमारे तैं हमारे किये नाकौं दम,
मारि मारि गुलचा तेरो थूथरो सुजाऊँगी।
खात खीर-खाँड़ तो पै बीजुरी परति साँड़,
रोटी को न दऊँ टूक माटी ही खवाऊँगी॥
ठाड़ो मुख मूँदे बताय नेकु सूधें,
नहिं बाबा सोंकहि कें दोऊ कान खिचवाऊँगो।
यों ही नन्दरानी नकमानी मुसिक्यानी कहैं,
मोहड़ो तो दिखाउ नहिं हउवा पै कठवाऊँगी॥

प्रेम की निसानी छुपाने से छिपती नहीं, पूछने पर टोकने और रोकने पर 'प्रेमी' नाराज होता है, परन्तु वह दृष्टि से बच नहीं सकता। प्रियतम श्यामसुन्दर के मिलन की छटपटाहट में गोपी की दशा कैसी हो रही है, देखिये :—

भूली सी भ्रमी सी चौंकी जकी सी थकी सी गोपी,
दुखी सी रहति कछु नाहिं सुधि देह की।
मोह सी लुभाई कछु मोदक सी खाये सदा,
बिसरी सी रहै नैकु खबर न गेह की॥
रिस भरी रहै कबौं फूली न समाति अङ्ग,
हँसि हँसि कहै बात अधिक उमेह की।
पूछें ते खिसानी होय उत्तर न आवैं ताहि,
जानी हम जानी है निसानी या सनेह की॥

* * * *

जब ते कुँवर कान्ह रावरी कला-निधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।

तब होतें 'देव' देखी-देवता सी, हँसति सी,
खीझति सी रीझति सी रूसति-रिसानी सी ॥
छोडी सी छली-सी छीनि लीनी सी, छकसी छीन,
जकी सी टकी सी लगी थकी-थहरानी-सी ।
बीधी-सी बधी-सी विष बूढ़ी सी विमोहित सी,
बैठी वह बकति विलोकति बिकानी सी ॥

* * * *

बोल्यौ करै नूपुर श्रौनन के निकट सदा,
पद तल माँहि मन मेरौ विहरचौ करै ।
बाज्यौ करै बंसी-धुनि पूरि रोम-रोम मुख,
मन मुसुकानि मन्द मनहिं हस्यौ करै ।
"हरीचन्द" चलनि मुरनि बतरानि चित,
छाई रहै छबि जुग दृगनि भरचौ करै ।
प्रान हू ते प्यारौ रहै प्यारौ तू सदाई प्यारे,
पीतपट सदा हीय बीच फहरचौ करै ॥

* * * *

भृकुटी - कमान तान फिरति इकेली बधू ।
तापै ए विसिख कोर कज्जल भरै है री ॥
तोहि देखि मेरे हू गोविन्द मन डोल उठै ।
मघवा निगोडौ उतै रोष पकरै है री ।
वलि बलि जाऊँ वृषभानु की कुमारी तेरी ।
नैंकु कह्यौ मान मेरौ कहा विगरै है री ॥
चंचल चपल ललचौंहे दृग मूँदि राखि ।
जौलौं गिरधारी, गिरि नख पै धरे हैं री ।

शीतल कवि तो उस बाँके बिहारी की भौं मरोड़ पर लट्टू हो रहे हैं, विहारी की दोस्ती का मजा उन्होंने ही लूटा है, क्याही कसकदार भाषा में उन्होंने कहा है :-

जानी ! भौंहों की तानों से, हमको मत खींचो आरों पर;
दर्शन अलवेले बाँके का, चलना खंजर की धारों पर ।
यह बार तुम्हारे हैं, दिलवर दिल शेर हजारों पर;
कट जा मन सफल मनोरथ है, काशी करवट के आरों पर ॥

* * * *

काहे हमको दिखलाते हो, जानी अवरू खमदार बहुत;
वे दिन दिलवर क्या भूल गये, करते थे हमसे प्यार बहुत ।

अब 'परैं सरक जा' कहते हो, हो जा मत मुझसे यार बहुत,
इन दिनों बगल में रहती हैं, जालिम तेरे तलवार बहुत ॥

* * * *

तेरी जुल्फौं का पेच लखे, नागिन का सीना फाटै है।
कुण्डल मोती मुख लिये हुए, अहि बाल ओस को चाटै है॥
खा रही लहर जो सम्बुल की उपमा को फिर फिर डाटै है।
लहराती लखें मरें जीवें, लहरें लेवें बिन काटै है॥

रसिक कविवर श्रीललित किशोरी जी व्रजभूमि के कण-कण पर फिदा होरहे हैं। नन्द के लाला का साक्षात्कार कर उन्होंने क्या ही सजीव वर्णन किया है, उनकी अन्त की एक गजल कमाल की है :—

जमुना - पुलिन - कुञ्ज गहवर की,
कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद पंकज-प्रिय लाल मधुप ह्वै,
मधुरे मधुरे गूँज सुनाऊँ।
कूकर ह्वै बन बीथिन डोलों,
बचे सीथ रसिकन के पाऊँ
"ललित किशोरी" आस यही मम,
व्रजरज तजि छिन अनत न जाऊँ॥

* * * *

देखौ री यह नन्द का छोरा, बरछी मारे जाता है,
बरछी सी तिरछी चितवन की पैनी छुरी चलाता है।
'ललित किशोरी' जखम जिगर पर नौंन पुरी बुरकाता है,
हमको घायल कर बेदरदी, मन्द-मन्द मुसिकाता है।

* * * *

गौर श्याम बदनार विन्द पर जिसको वीर मचलते देखा,
नयन बान मुसिकान संग फँसि फिर नहीं नेंक संभलते देखा।
"ललित किशोरी" जुगल इश्क में, बहुतों का घर घलते देखा,
डूबा प्रेम सिन्धु का कोई, हमने नहीं उछलते देखा॥

* * * *

वृन्दा विपिन की कुँजों जाती थी रस्ते रस्ते।
वहाँ आगया अचानक जूड़े को कस्ते कस्ते॥

चित छुट पड़ा बदन पर बालों में फस्ते-फस्ते।
मुश्किल से बची नागिन अलकों से डस्ते डस्ते॥
दिल ले गया हमारा नन्दलाल हँसते - हँसते ॥१॥

प्यारी के संग खड़ा था वह साँवला बिहारी।
दृग कोर मोर मेरे सैनों जड़ी कटारी॥
सुध बुध रही न तन की सब भूल गई हमारी।
जमना के तीर सुन्दर जहाँ फूली फुलवारी॥
दिल ले गया हमारा नन्दलाल हँसते - हँसते ॥२॥

कछनी कमर पै काछै सुन्दर सलौना ढ़ोटा।
कस पीत वसन आछैं कटि बाँध वह कछौटा॥
गैयान हू के पाछैं दृग देखने में छोटा।
चितवन के बान मारे सब भाँत से है खोटा॥
दिल ले गया हमारा नन्द लाल हँसते हँसते ॥३॥

गोकुल की गैल मुझ से हँसि पूछि आ बिहारी।
थी संग उसके सुन्दर वृषभानु जा दुलारी॥
क्या हंस की सी जोड़ी आँखों को लगी प्यारी।
मैं होगई दिवानी जब से वह छबि निहारी॥
दिल ले गया हमारा नन्दलाल हँसते हँसते ॥४॥

वृन्दा विपिन की गलियों दो चाँद से खड़े थे।
मुसक्या के करते बातें नैनों से दृग लड़े थे॥
मद रूप छबि छके से टलते नहीं अड़े थे।
सखियों के यूथ कितने बेहोश हो पड़े थे॥
दिल ले गया हमारा नन्दलाल हँसते हँसते ॥५॥

पट आ रहा असन पर प्यारी के खस्ते खस्ते।
कहि आय निकसे मोहन कुँजों में बस्ते बस्ते॥
तन मन सुरति बिसारी, बगिया में धसते धसते।
मुसक्यान पर विकाने क्या खूब सस्ते-सस्ते॥
दिल ले गया हमारा नन्दलाल हँसते - हँसते ॥६॥

घुँघराली झूँमें अलकें मधुकर से मस्ते-मस्ते।
पगिया से निकली नागिन, डिबिया में बस्ते-बस्ते॥
हुआ हिलाल देख के मुख-चन्द्र नस्ते-नस्ते।

झाँका लतान रन्ध्रों से जब झुक के पस्ते-पस्ते ॥
दिल ले गया हमारा नंद लाल हँसते - हसते ॥७॥

आई ललित किशोरी ब्रज बाल हँसते-हँसते ।
कुँजों में ले गया छल गोपाल हँसते-हँसते ॥
कुछ जादू की सी पुड़िया पढ़ि डालि हँसते-हँसते ।
वह कर गया बेदरीदी बेहाल हँसते-हँसते ॥
दिल ले गया हमारा नन्दलाल हँसते-हँसते ॥८॥

* * * *

श्री वृन्दावन वास दीजिये, आस यहै वृषभानु दुलारी ।
वंशीवट तट नट नागरी संग करत केलि अवलाकों प्यारी ॥
ललित किशोरी हूक उठत ही फूँकि वँसुरिया की दइ मारी ।
दरसन बिन चित विकल रहत अति, राधा हरो यह बाधा हमारी ॥

* * * *

श्री वृन्दावन रज दरसावै, सोई हितू हमारा है ।
राधा मोहन छबी छकावै, सोई प्रीतम प्यारा है ॥
कालिन्दी जल पान करावै, सो उपकारी सारा है ।
ललित किशोरी जुगल मिलावै, सो अँखियों का तारा है ॥

* * * *

श्री वृन्दावन वास दीजिये, यही हमारी आशा है ।
जमुना कूलन छाँह माधुरी, जहाँ रसिकों का वासा है ॥
सेवा कुञ्ज मनोहर सुन्दर, यक रस बारो मासा है ।
ललित किशोरी का दिल बेकल, जुगल रूप रस प्यासा है ॥

* * * *

पीरौ पट नीलांवर ओढ़े चितवत लखौं दृगन की कोरी ।
रस भीनी बतियाँ बतराबत, साँवल गात अङ्ग की गोरी ॥
ललित किशोरी ललित लतन पर वृन्दावन कुञ्जन की खोरी ।
भुजग रमे लै चलत जोरि मुख, निरखौं कब वृजचन्द्र चकोरी ॥

भगवान का प्रेमी मस्त तो होता ही है, वह संतोषी भी पूरा होता है, किसी से शिकायत करना वह जानता ही नहीं, अपने हर हाल पर वह खुश है, देखिये कविवर 'नजीर' की नजर में :—

गर उसने उड़ाया तो लिया ओढ़ दुशाला,
कम्बल जो दिया तो वही कन्धे पै है डाला ।
चादर जो उढ़ाई तो वही हो गई बाला,
बँध वाई लँगोटी तो वही हँस के सँभाला ।

पोशाक में, दस्तार में, रूमाल में खुश हैं,
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥१॥

जो फुक्र में पूरे हैं वो हर हाल में खुश हैं,
हर काम में, हर दाम में, हर जाल में खुश हैं।
गर माल दिया यार ने, तो माल में खुश हैं,
बेजर जो किया तो उसी अहवाल में खुश हैं।
इफलास में अद वार में एक बाल में खुश हैं,
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥२॥

गर यार की मर्जी हुई सर जोड़ के बैठे,
घर बार छुड़ाया तो वहीं छोड़ के बैठे।
मोड़ा उन्हें जिधर वहीं मुँह मोड़ के बैठे,
गुदड़ी जो सिलाई तो वही ओड़ के बैठे।
और शाल उढ़ाई तो उसी शाल में खुश हैं,
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥३॥

गर खाट बिछाने को मिली खाट में सोए,
दूकाँ में सुलाया तो वो जा हाट में सोए।
रस्ते में कहा सो तो वह जा बाद में सोए,
गर टाट बिछाने को दिया टाट में सोए।
और खाल बिछा दी तो उसी खाल में खुश हैं,
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥४॥

गर उसने कहा सैर करो जाके जहाँ की,
तो फिरने लगे जङ्गलों-बन मार के झां की।
कुछ दस्ते बियाबाँ में खबर तन की न जाँ की,
और फिर जो कहा सैर करो हुस्ने-बुताँ की।
तो चश्मो, रुखो, जुल्फो, खतो, खाल में खुश हैं,
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥५॥

कश के का हुआ हुक्म तो कशका वहीं खींचा,
जुब्बे की रजा देखी तो जुब्बा वहीं पहना।
आजाद कहा गर तो वहीं सर को मुड़ाया,
जो रङ्ग कहा उसने वही रङ्ग रङ्गाया।
क्या जर्द में, क्या सब्ज में, क्या लाल में खुश हैं,
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं ॥६॥

व्रज-वृन्दावन के रस-सरोवर में डूबते उतरते वर्त्तमान में व्रजभावों के गायक एक कवि श्रीबाबूराम जी 'हरेकृष्ण' ने इस व्रजरस माधुरी का आनन्द खूब लूटा है, उन्होंने प्रिया-प्रियतम और उनके संबंध की एक-एक वस्तु का कैसा चित्रण किया है—यह देखते ही बनता है। प्रेमी रसिकों की जानकारी के लिये यहाँ उनका एक-एक नमूना दिया जारहा है :—

वृन्दावन में जरा आजाद टहलने न दिया।
कफस में कैद किया, हाथ भी मलने न दिया।।
सूर रसखान घनानन्द सी होगयी हालत।
रूप सरिता में पड़े मनको उछलने न दिया।।
चित्त लुभाया हरे कृष्ण! सताया लेकिन।
प्रेम प्रत्यक्ष कभी हाय! उबलने न दिया।।
गोद में बैठ नहीं मोद से मक्खन खाया।
हौसला दिल का कभी नाथ निकलने न दिया।।

* * * *

रोते रोते तेरी स्मृति में जिगर बैठ गया।
मुरली वाले तू मेरे जाके किधर बैठ गया।।
याद में तेरी हुये घर बरबाद अनेकों।
कोई गोकुल के इधर कोई उधर बैठ गया।।
मोह किस तौर रहे दुनियाँ से बता मोहन।
चीर कर दिल को तेरा तीरे नजर बैठ गया।।
हाय! हरे कृष्ण नहीं कुछ भी सुहाता मुझको।
हृदय में जब से मेरे कान्ह कुँवर बैठ गया।।

* * * *

व्रज में प्रवेश करते ही कर्ण कुहरों में,
करती प्रवेश ध्वनि राधे राधे श्याम की।
ज्यों ज्यों पग आड़े पड़ते पवित्र पत्तनों में,
सुनते सरस व्रजभाषा ग्राम ग्राम की।।
पथ में करीलों के कलित कुंज सोहें,
सहसा सुध आ जाती प्यारे घनश्याम की।
छाती भर आती हाय! गरिमा गुणों की देख,
महिमा विदित होती वृन्दाबन धाम की।।

* * * *

वृन्दावन-वृक्ष हैं कि पारिजात नन्दन के,
वृन्दावन शाखा या प्रेमाञ्जन शलाका हैं।

वृन्दावन-रज या रजत रेणु राज रही,
वृन्दावन पथ हैं कि प्रेम-पुरी नाका हैं।।
वृन्दावन कुँज या इन्द्र भवन शोभित हैं,
वृन्दावन धाम या निकेतन प्रभा का हैं।
वृन्दावन फूल हैं कि तारावलि उतारी ये,
वृन्दावन पात हैं कि प्रेम की पताका हैं।।

* * * *

स्वर्ग में कहाँ है मधुर ध्वनि राधे राधे की,
स्वर्ग में कहाँ कलित कुँज अभिराम है।
स्वर्ग में कहाँ भीर गोपी राय ग्वाल बालों की,
स्वर्ग में कहाँ पुलिन यमुना ललाम है।।
स्वर्ग में सरस ब्रजभाषा का प्रचार कहाँ,
स्वर्ग में कहाँ माखन चोर घनश्याम है।
स्वर्ग में अमित सुख इतना अपार कहाँ,
स्वर्ग से भी श्रेष्ठ यह वृन्दावन धाम है।।

* * * *

एक रज रेणुका पै रजत-पहार वारौं,
क्षीर सुधा-सिन्धु वारौं जमुना ललाम पै।
वारौं कोटि कामधेनु एक एक कपिला पै,
वारौं कल्पतरु को कदम्ब अभिराम पै।।
वारौं शची रमा उमा राधा पदपंकज पै,
वारौं शत कोटि काम प्यारे घनश्याम पै।
वारौं सब देव लोक एक एक मन्दिर पै,
बारि डारौं ब्रह्म लोक वृन्दावन धाम पै।।

* * * *

प्रेम की पिपासा बढ़ी देख निज प्रेमियों की,
प्रेम का समुद्र सीमा तोड़ के बहाया है।
भावुक रसीले जन निराश न होंगे अब,
कामना पूर्तिकर कल्पतरु लगाया है।।
चिन्तामणि जटित चारु चादर बिछाई ये,
कुँज प्रति कुँज भाँति भाँति से सजाया है।

भारत का भूषण औ तिलक तीन लोकों का,
भक्तों के वास हेतु वृन्दावन बनाया है ।।

* * * *

श्याम ही की याद में तौ श्याम रंग तेरा हुआ,
जाना खूब जाना गुप्त भाव तेरे मन का ।
सूख के शरीर हाय ! काँटा हुआ वेदना से,
तोड़के फैंका पत्ता पत्ता कुञ्ज-भवन का ।।
फूल नहीं फूले विरहाग्नि से विदीर्ण हुआ,
लाल लाल निकला कलेजा तेरे तन का ।
कौन कवि अज्ञ तुझे कहता करील ! प्यारे,
तू तौ है साक्षात् कल्पवृक्ष वृन्दावन का ।।

* * * *

धन्य धन्य वृन्दावन वासी बिलाव चूहे जो,
मन्दिरों में घुस प्रभु का प्रसाद पाते हैं ।
धन्य धन्य वृन्दावन वासी कीट पतंग जो,
पादोदक पान कर लोटते नहाते हैं ।।
धन्य धन्य वृन्दावन बासी मशक वृन्द जो,
साधुओं को जगाके भजन कर वाते हैं ।
धन्य धन्य वृन्दावन वासी मोर मर्कट जो,
नाँच नाँच नित्य सुधि श्याम की दिलाते हैं ।।

* * * *

एक बार अयोध्या और दो बार द्वारिका जाओ,
तीन बार जाकर त्रिवेणी में नहाओगे ।
चार बार चित्रकूट नव बार नासिक में,
बार बार जाके बद्रीनाथ घूम आओगे ।।
कोटि बार काशी केदारनाथ रामेश्वर में,
गया जगन्नाथ आदि चाहे जहाँ जाओगे ।
होते प्रत्यक्ष यहाँ दर्शन श्याम सुन्दर के,
वृन्दावन सा कहीं आनन्द नहीं पाओगे ।।

* * * *

कीरति सुता के पग पग में प्रयाग जहाँ,
केशव के केलि कुञ्ज कोटि कोटि काशी हैं ।

जमुना में जगन्नाथ रेणुका में रामेश्वर,
तरु तरु पै अमित अयोध्या निवासी हैं ॥
गोपियों के द्वार द्वार पर हरिद्वार जहाँ,
वद्री केदार जहाँ फिरते दास दासी हैं।
स्वर्ग अपवर्ग लेकर व्यर्थ में करेंगे क्या ?
जानते नहीं हो हम वृन्दावन बासी हैं ॥

* * * *

वेदों में न देखा ब्रह्म शास्त्रों में न देखा ब्रह्म,
दर्शन वेदान्त में न देखा ब्रह्म मूल में।
योग में समाधि में न देखा हरे कृष्ण उसे,
खोजा सब ठौर पात पात फूल फूल में ॥
भक्तों के प्रसाद से विषाद अब दूर हुआ,
आभा कुछ दिखाई दी कालिन्दी के कूल में।
आगे बढ़ देखा तो ग्वाल बालों को संग लिये,
ब्रह्म वह लोट रहा वृन्दावन धूल में ॥

* * * *

कलित कदम्बों के कमनीय केलि कुँजों में,
कल कल करता कालिन्दी का किनारा हो।
तीखे दृग तान मंजु मुरली बजाता हुआ,
वेश नटवर खड़ा नन्द का दुलारा हो ॥
रास का प्रबन्ध करें ललिता रंग देवी जी,
मण्डल रचाया गया भानु सुता द्वारा हो।
प्रेमावतार कृष्ण करता हो विहार जहाँ,
प्रेमियों को क्यों न फिर वृन्दावन प्यारा हो ॥

* * * *

काँटेदार करील के वृक्ष जिस भूमि पर,
देता दिखलाई जहाँ खारा जल कूप है।
गारी दै बोलते ब्रजवासी सब आपस में,
अन्न फल हीन धरा खादर कुरूप है ॥
पाकर के छाक छाछ गउयें चराता फिरैं,
फिर भी बनाया उसे स्वर्ग से अनूप है।

ऐसा जो मन मौजी मस्त ठाकुर त्रिलोकी का,
रक्षक हमारा वही वृन्दावन - भूप है ।।

* * * *

गोवर्द्धन शैल वही मान दण्ड वसुधा का,
जिसको उठाया श्याम सुन्दर ने हाथ में ।
जमुना जल विमल धार वही बहती है,
जिसमें नहाये श्याम गोपियों के साथ में ।।
यशोदा अजिर में अनेकों खेल खेले जहाँ,
प्यारी ब्रजधूल वही बिछी पथ पाथ में ।
सागर तरंग सम भेद नहीं कोई मित्र,
वृन्दावन धाम और वृन्दावन नाथ में ।।

* * * *

स्वर्ग से विशेष जहाँ ब्रज रस-रसिकों को,
रहता है अतुल उत्साह नित आने में ।
होता प्रत्यक्ष दिव्य जीवन का विकास जहाँ,
एक बार प्रेम युक्त, कृष्ण-कृष्ण गाने में ।।
प्यारी ब्रज भूमि का प्रभाव ही है ऐसा कुछ,
चित्त फँस जाता, पीत नीलाम्बर बाने में ।
प्यारे के साथ रहें, प्रिया के कुँज महलों में,
कैद कब होंगे हाय ! वृन्दावन थाने में ।।

ब्रज और वृन्दावन की महिमा ब्रज के लोकप्रिय गीत, रसियों में बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से गायी जाती है । कुछ रसिया गीतों का आनन्द लीजिये :—

मेरौ ब्रज वृन्दावन धाम लोक वेदन ते न्यारौ है,
यामें बरसानौ नन्दगांव मोहि अति लागत पियारौ है ।
अजी यहाँ दिव्य प्रेम रजधानी, याकू जानत मुनिजन ज्ञानी,
साधक साधन ते नहिं पावै सो रस यहाँ सहज कृपा मिलि जावै ।।

दोहा—जा रस कूँ सनकादि मुनि, ब्रह्मा शिव ललचाय ।
सो रस ब्रज की गलीन वसि, रसिकन पियौ अघाय ।।
या सुख आगें लगै स्वर्ग सुख खट्टो खारौ है ।।लोक०।।

आऊँ ध्यान में न योगीन के,यहाँ उझकत फिरूँ द्वार गोपिन के ।
पनघट चलै तौ पीछे धाऊँ, गागर भरूँ और शीश उठाऊँ ।।

दो०—सृष्टी की उत्पत्ति करूँ, पालन और संहार।
रिणियाँ बनि ब्रज सवन कौ, करत फिरूँ मनुहार॥
तनक दही माखन हित रोकूँ गैल गिरारौ है॥लोक०॥
संग में ग्वाल बाल लै जाऊँ माखन चोरि चोरि दधि खाऊँ।
मोकूँ निगम नेति कहि हारे, ग्वालिन गुलचा दै दै मारें॥
दो०—सहस्त्र मथानी मथत हैं मो नन्द बबा के द्वार।
ब्रज गोपीन की छाछि पै नाचूँ सौ सौ बार॥
छत्र चँवर शिर छोड़ि ओढ़ लीयौ कम्बर कारौ है॥लोक०॥
मेरौ यह ब्रज देश न होतौ, रस माधुर्य विचारौ रौतौ।
ब्रज बिन रस कवि और रसिक जन, ढूँढ़त ब्रह्म भटकते बन बन॥
दो०—लीलाधर या भूमि में गयौ अपनपौ भूलि।
ब्रह्मा शिव सनकादि मुनि, वन्दत ब्रज की धूलि॥
लोटत फिरचौ 'कुमर' ब्रज गलियन ब्रह्म विचारौ है—
लोक वेदन ते न्यारौ है॥

* * * *

रूप अनौखौ पायौ सो गोरी तैने।
एक तौ कटीले नैंना वाहू पै रसीले बैना,
याते चित्त चुरायौ ; तैने रूप.....॥१॥
नैना देख तेरे मृग बनहू कौ वास लियौ,
नासिका पै कीर लाल होठ की ललाई है।
देख मुसक्यान चमकान घन दामिन सी,
बोलन ते कोयल अधिक सकुचाई है॥
तापै अति झीनौ पट मारि लियौ यों घूँघट।
रति कूँ अधिक लजायौ॥तैने.....॥२॥
घुँघरारे केश मानौ भौंरन कौ जूथ उठचौ,
ग्रीव की लटक सो कपोत मन भाई है।
हिय में हमेल बाजें, बाजूबन्द पहुँची साजें,
अंगीया जो छतीया पै जरी की झुकाई है॥
कटि नीकी केहरी सों चाल मस्तानी लखि,
मन में गज शरमायौ।तैने.....॥३॥
रूप की मारि मारि निधान नैन वाण,
प्राण विध जात त्रिक जात तेरे रूप बाजार में।

बुरौ कियौ विधनाने तोकूँ ऐसौ रूप दीयौ,
देखि मन पक्षी फँसे रूप जंजार में ।।
ऐतौ सब पायौ न बसायौ हिय नन्दलाल ।
कौन काम यह आयौ ।।तैने.....।।४।।

और अन्त में मेरे सरकार ! कुछ खरी खोटी भी सुनो, आपके दिव्य दरबार में अजामिल, गणिका और गीध के साथ जाट, जुलाहा, दरजी, छीपी, कहार, नाऊ, स्वपच जैसों के साथ अन्धे, लँगड़े लूले खुशामदी टट्टूओं की भरमार है, चाप लूस कसरत से भरे हुए हैं ? कवि "शिव लाल" जी के शब्दों में :—

जाट जुलाहा, जुरे दरजी, मरजी मैं रहैं चिक-चोर चमारौ,
दीनन की सुधि दीनीं बिसारि, सु ता दिन तैं नहिं कीन गुहारौ ।
को 'शिव लाल' की बातैं सुनैं, इनहीं कौ रहै दिन-रात अखारौ,
एते बड़े करुना कर कौ, इन पाजिन नैं दरबार बिगारौ ।।

* * * *

कोरी औ चमार चिरीमार कौं जु यार करि,
प्यार करि सदना सुपच मन भाए हैं ।
छिपिया, कहार, नाऊ, दाऊ कै सुदामा देखौ,
गिद्ध के अगाऊ ह्वै कैं जाइ गुन गाए हैं ।
"घासीराम" राजी ह्वै विदुर घर भाजी खाई,
पाजी भिलनी के बेर जूठे मुँह नाए हैं ।
कहिऐ कहाँ लौं कलिकाल के अँदेसे ऐसे—
नीच रङ्की ठाकुर ठिकानैं होत आए हैं ।।

और मित्र ! हम तो तुम्हारे 'सुदामा' मित्र की तरह सखा है, जरा हमारी इस हालत पर भी नजर रखना और कृपा की भीख डाल देना :—

गेहे टूटी खटोली कुथल सयुक्ता-चीथड़ों के बिछौना,
कन्थां फाटी लँगोटी सिरसि न टुपिया खण्ड-खण्डं दुपट्टा ।
सूखी रोटी चणां की लवण विरहिता, प्राप्यते वासरान्ते,
यद्यपि ऐसी व्यवस्था, तदपि "सुदामा" नैव गर्वं जहाति ।।

★ 'भक्त-भारत ग्रन्थमाला C/o चार सम्प्रदाय आश्रम'

वृन्दावन के प्रकाशन

१. श्री कृष्णकर्णामृत-व्रजरस का अनूठा ग्रन्थ, एक बार अध्ययन करने पर अन्तःकरण भाव-रस सागर में तैरने लगता है, मूल्य १५.५०

२. पद्यावली-प्राचीन रसिक कवियों की भावपूर्ण संस्कृत वाणियों का श्रीरूपगोस्वामी द्वारा सङ्कलन। हिन्दी अनुवाद सहित मूल्य ३.५०

३. रामकृष्ण लीलामृत-श्रीराम कृष्ण की लीलाओं का वर्णन मूल्य २.५०

४. स्वस्थ रहने के उपाय स्वास्थ्य रक्षा के लिये उपयोगी मूल्य २.८०

५. भक्ति रत्नावली-श्रीमद्भागवत के १८ हजार श्लोकों में से चुने हुए नवधाभक्ति विषयक श्लोक हिन्दी टीका सहित मूल्य ३.५०

६. श्रीमद्भागवत तत्व विमर्ष—भागवत पर उठने वाली शङ्काओं का प्रमाण सहित समीचीन समाधान। मूल्य १.००

७. रामपञ्चाध्यायी-मूल संस्कृत, मूल्य ००.७५ हिन्दी टीका सहित मूल्य १.५०

८. जन्मभूमि, कृष्ण जन्मभूमि मथुरा का ऐतिहासिक वर्णन मूल्य १.५०

९. भक्ति ग्रन्थमाला-श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती के 'माधुर्य कादम्बनी' आदि पांचों ग्रन्थों का बंगला से हिन्दी अनुवाद, मूल्य १.५०

१०. व्रजेश्वरी श्रीराधा—श्रीराधा के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी के सहित उनके वैदिक, पौराणिक और साहित्यिक रूप का विवेचन, मूल्य ४.००

११. श्रीयमुनाष्टक—श्रीकृष्ण की पट्टमहिषी श्रीयमुना के सम्बन्ध की जानकारी के लिये यह ग्रन्थ परम उपयोगी है, मूल्य १.५०

१२. वैदिकबोध मीमांसा—वैदिक विषयों पर उठने वाली शङ्काओं का प्रमाण सहित समाधान, मूल्य १.५०

१३. श्रीराधारमण पदावली—श्रीकृष्ण विषयक पद मूल्य ०.५०

१४. जीवनझांकी—चार सम्प्रदाय आश्रम के संस्थापक श्री १०८ श्रीगुरुदेव स्वामी कृष्णानन्ददास जी का जीवन चरित्र, मूल्य १.००

१५. श्रीवल्लभाचार्य परिचय और सिद्धान्त, मूल्य १.५०

१६. श्रीकृष्णमाधुरी अङ्क मूल्य १.५०

१७. साधु अङ्क (साधु सम्बन्धी समस्त जानकारी) मूल्य २.५०

१८. चैतन्य सम्प्रदाय अङ्क (महाप्रभु सम्प्रदाय का परिचय) मूल्य ०.५०

१९. गुरु पूजा अङ्क (गुरु पूजा पर सशक्त लेख) मूल्य १.००

२०. चैतन्य चरित सुधा (श्री महाप्रभु का चरित्र) मूल्य २.५०

२१. व्रजरसमाधुरी अङ्क—व्रज की रसमयी भावना पूर्ण वाणियों से ओत-प्रोत संग्रहणीय। मूल्य ३.५०

२२. साधन-भक्ति अङ्क—वैष्णवों की नित्यक्रिया पद्धति एवं पूजा-पद्धति से युक्त। मूल्य १.००

ब्रज सम्बन्धी समस्त साहित्य की
प्राप्ति के लिये लिखिये—

"भक्तभारत ग्रन्थमाला

चार सम्प्रदाय आश्रम. वृन्दावन,

(मथुरा) उ० प्र०

मुद्रक—विभूतिकृष्ण गोस्वामी, वैजयन्ती प्रेस, वृन्दावन ।